मोटे अनाज:
फसल विज्ञान,
पोषण एवं प्रबंधन

मोटे अनाजः
फसल विज्ञान, पोषण एवं प्रबंधन

लेखक

डॉ अजय कुमार
सहायक आचार्य
पादप संरक्षण विभाग
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,
मेरठ

कपिल सैनी
अध्यापक
पादप संरक्षण विभाग
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,
मेरठ

प्रकाशक
अनु बुक्स
o दिल्ली o मेरठ o ग्लासगो (यू०के०)
वेबसाइट: www.anubooks.com

मोटे अनाजः फसल विज्ञान, पोषण एवं प्रबंधन

First Published: 2026
ISBN: 978-93-7847-303-6
Book Code: AB357-J226
Price: Rs. 450.00
DOI: 10.31995/Book.AB357-J226

© Author

All rights including copyrights and rights of translation etc. are reserved and vested exclusively with the author. No part of this publication shall be reproduced or transmitted in any form or by any means, including electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise or stored in any retrieval system of any nature without the express permission of the author.

Published by:
Mr. Vishal Mithal
Anu Books
Publishers & Distributors
H.O. GF -1, Navkar Kunj, Saket, Meerut (UP) 0121 -7964594, 8800688996
Branch: Green Park Extension, New Delhi-110016, 9997847837
Glasgow (UK)+447586513591
E-mail: infoanubooks@gmail.com
Printed, Design & Published in India

NAAC A++

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ-250 004 (उ०प्र०)

प्रोफेसर संगीता शुक्ला
डी०एससी०
कुलपति

पत्रांक : एस०वी०सी० / 22 / 23
दिनांक : 08.01.2026

'प्रस्तावना'

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हो रहा है कि **"मोटे अनाजः फसल विज्ञान, पोषण एवं प्रबंधन"** नामक पुस्तक अत्यंत प्रासंगिक एवं भविष्य उन्मुख विषय पर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। यह पुस्तक वर्तमान समय की मांग के अनुरूप एक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रयास है, जो कृषि, पोषण और मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में सार्थक योगदान प्रदान करेगी।

मोटे अनाज भारत की प्राचीन कृषि परंपरा का अभिन्न अंग रहे हैं। बदलते जलवायु परिदृश्य, सीमित प्राकृतिक संसाधनों, बढ़ती जनसंख्या और पोषण असुरक्षा जैसी वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में इनका महत्व आज पुनः स्थापित हो रहा है। मोटे अनाज न केवल कम जल और सीमित संसाधनों में भी सफलतापूर्वक उगाए जा सकते हैं, बल्कि अपने उच्च पोषण मूल्य के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होते हैं।

यह पुस्तक मोटे अनाजों के परिचय, भारत एवं विश्व में उनके ऐतिहासिक विकास, पोषणात्मक महत्त्व तथा मानव स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव जैसे आधारभूत विषयों से प्रारम्भ होकर बाजरा, रागी, कांगनी, सांवा, चना, कुटकी, कोदो, राजगीरा एवं ज्वार जैसे विभिन्न मोटे अनाजों का विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करेगी। इसकी सामग्री विशेष रूप से कृषि के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों, शोधार्थियों, कृषि विस्तार कार्यकर्ताओं एवं किसानों के लिए अत्यंत लाभदायक होगी। ऐसी अपेक्षा है कि सरल एवं प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत यह पुस्तक अध्ययन, शिक्षण तथा व्यवहारिक अनुप्रयोग– तीनों दृष्टियों से अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक एक उपयोगी संदर्भ ग्रंथ के रूप में स्थापित होगी तथा मोटे अनाजों के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

मैं लेखक को इस उत्कृष्ट कृति के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ देती हूँ और आशा करती हूँ कि यह पुस्तक कृषि एवं पोषण के क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सहायक सिद्ध होगी।

Sangeeta

(संगीता शुक्ला)

डॉ0 अजय कुमार
सहायक आचार्य,
पादप संरक्षण विभाग,
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास में कृषि का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। समय के साथ हमारी खाद्य आदतों और कृषि प्रणालियों में अनेक परिवर्तन हुए हैं, जिनके कारण पारंपरिक एवं पोषक फसलों का महत्व कहीं न कहीं कम होता गया। ऐसी ही महत्वपूर्ण फसलें हैं– मोटे अनाज (Millets), जिन्हें कभी "गरीबों का भोजन" कहा जाता था, आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन्हें "सुपरफूड" के रूप में पुनः मान्यता मिल रही है।

मोटे अनाज जैसे बाजरा, ज्वार, रागी, कांगनी, कोदो, कुटकी आदि न केवल पोषण से भरपूर हैं, बल्कि ये जलवायु परिवर्तन के दौर में भी टिकाऊ कृषि का आधार बन सकते हैं। कम पानी, कम उर्वरक और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इनकी सफल खेती संभव है, जिससे ये छोटे और सीमांत किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होते हैं।

इस पुस्तक का उद्देश्य मोटे अनाजों के विभिन्न पहलुओं–उनके इतिहास, पोषण महत्व, कृषि तकनीक, उत्पादन, प्रसंस्करण तथा मूल्य संवर्धन–को सरल एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना है। विशेष रूप से, यह पुस्तक छात्रों, शोधार्थियों, कृषकों तथा कृषि क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें भारत एवं विश्व में मोटे अनाजों के ऐतिहासिक विकास, उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव, और आधुनिक समय में उनकी प्रासंगिकता को विस्तार से समझाया गया है। आज जब कुपोषण, मधुमेह, मोटापा और अन्य जीवनशैली संबंधी रोग तेजी से बढ़ रहे हैं, तब मोटे अनाज एक संतुलित और स्वास्थ्यवर्धक विकल्प के रूप में सामने आए हैं। सरकार द्वारा भी इन फसलों को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जिससे इनका महत्व और अधिक बढ़ गया है।

मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक पाठकों को न केवल मोटे अनाजों के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक ज्ञान से समृद्ध करेगी, बल्कि उन्हें इनके उपयोग और प्रसार के लिए प्रेरित भी करेगी।

लेखक

डॉ. अजय कुमार

कपिल सैनी

अनुक्रमणिका

अध्याय–1	मोटे अनाज का परिचय	**1–4**
अध्याय–2	भारत और विश्व में मोटे अनाज का इतिहास	**5–8**
अध्याय–3	पोषक महत्व एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव	**9–12**
अध्याय–4	बाजरा (पर्ल मिलेट)	**13–23**
अध्याय–5	रागी / नाचनी (फिंगेर मिलेट)	**24–37**
अध्याय–6	कांगनी (फ़ॉक्सटेल मिलेट)	**38–51**
अध्याय–7	सांवा (बार्नयार्ड मिलेट)	**52–63**
अध्याय–8	चेना / चिनी (प्रोसो मिलेट)	**64–74**
अध्याय–9	कुटकी (लिटिल मिलेट)	**75–86**
अध्याय–10	कोदो (कोदो मिलेट)	**87–100**
अध्याय–11	छद्म बाजरा (बकव्हीट)	**101–112**
अध्याय–12	राजगीरा / अमरंथ	**113–125**
अध्याय–13	ज्वार (सोरघम)	**126–137**

अध्याय १

मोटे अनाज का परिचय

मोटे अनाज, जिन्हें वर्तमान समय में "श्रीअन्न (Millets)" के नाम से भी जाना जाता है, मानव सभ्यता के सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण खाद्य स्त्रोतों में से एक हैं। ये छोटे दाने वाली अनाज फसलें हैं, जो घास कुल (Poaceae) से संबंधित होती हैं तथा विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क जलवायु क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। मोटे अनाजों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी अत्यधिक अनुकूलन क्षमता है, जिसके कारण ये अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों जैसे कम वर्षा, उच्च तापमान, कम उपजाऊ मिट्टी एवं सीमित कृषि संसाधनों–में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने में सक्षम होती हैं। इसी कारण इन्हें जलवायु–सहिष्णु (Climate-resilient) फसलों के रूप में विशेष पहचान प्राप्त है। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मोटे अनाजों का उपयोग मानव द्वारा हजारों वर्षों से किया जा रहा है। पुरातात्विक साक्ष्य दर्शाते हैं कि एशिया और अफ्रीका के विभिन्न क्षेत्रों में इनका उपयोग लगभग 5000 से 7000 वर्ष पूर्व से हो रहा है। भारत में भी सिंधु घाटी सभ्यता के समय से इन फसलों की खेती के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। प्राचीन भारतीय कृषि पद्धतियों एवं आहार प्रणाली में मोटे अनाजों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ज्वार, बाजरा एवं रागी जैसे प्रमुख अनाज न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार थे, बल्कि ये ग्रामीण जीवनशैली एवं सांस्कृतिक परंपराओं का भी अभिन्न हिस्सा रहे हैं।

भारत, अफ्रीका तथा एशिया के अनेक देशों में मोटे अनाजों का उपयोग मुख्य खाद्य पदार्थ के रूप में किया जाता रहा है। विशेष रूप से ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में ये आज भी दैनिक भोजन का महत्वपूर्ण अंग हैं। इन क्षेत्रों में मोटे अनाज न केवल सुलभ एवं सस्ते होते हैं, बल्कि स्थानीय जलवायु एवं कृषि प्रणाली के अनुरूप भी होते हैं, जिससे इनकी उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। मोटे अनाजों का महत्व केवल खाद्य के रूप में ही सीमित नहीं है, बल्कि पोषण, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा कृषि अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से भी अत्यंत व्यापक है। वर्तमान समय में जब विश्व जलवायु परिवर्तन, जल संकट, मृदा क्षरण तथा पोषण असंतुलन जैसी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है, तब मोटे अनाज एक प्रभावी एवं टिकाऊ समाधान के रूप में उभरकर सामने आए हैं। ये फसलें कम जल की

आवश्यकता के कारण जल संरक्षण में सहायक होती हैं तथा रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों पर कम निर्भरता के कारण पर्यावरण के लिए भी अनुकूल होती हैं।

कृषि के संदर्भ में मोटे अनाजों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनकी खेती के लिए अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है। ये फसलें वर्षा आधारित (Rainfed) क्षेत्रों में भी अच्छी उपज देती हैं, जिससे सीमांत एवं लघु कृषकों के लिए यह अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त, इनकी फसल अवधि भी अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे किसान कम समय में उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं तथा फसल चक्र (Crop rotation) को भी प्रभावी ढंग से अपनाया जा सकता है। मृदा स्वास्थ्य के संदर्भ में भी मोटे अनाजों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इनकी जड़ प्रणाली गहरी होती है, जो मृदा संरचना को सुधारने तथा पोषक तत्वों के कुशल उपयोग में सहायक होती है। इसके साथ ही, इनकी खेती से मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे दीर्घकालिक रूप से मृदा उर्वरता बनी रहती है।

पोषण की दृष्टि से मोटे अनाज अत्यंत समृद्ध होते हैं, जिसके कारण इन्हें "न्यूट्री–सिरियल्स (Nutri-cereals)" के रूप में भी जाना जाता है। इनमें प्रोटीन, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन तथा खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। विशेष रूप से इनमें कैल्शियम, आयरन, जिंक एवं मैग्नीशियम की उच्च मात्रा पाई जाती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, रागी में कैल्शियम की मात्रा अत्यधिक होती है, जो हड्डियों एवं दांतों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है, जबकि बाजरा आयरन का समृद्ध स्रोत है, जो एनीमिया की रोकथाम में सहायक है। मोटे अनाजों का नियमित सेवन अनेक जीवनशैली संबंधी रोगों के नियंत्रण में भी सहायक माना जाता है। इनका ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, जिसके कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिए उपयुक्त आहार माना जाता है। इसके अतिरिक्त, उच्च फाइबर की उपस्थिति के कारण यह पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने, मोटापा नियंत्रित करने तथा हृदय रोगों के जोखिम को कम करने में सहायक होता है।

वर्तमान समय में तेजी से बदलती जीवनशैली, शहरीकरण एवं प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के बढ़ते उपयोग के कारण पोषण संबंधी असंतुलन एवं स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ रही हैं। ऐसे में मोटे अनाजों को "सुपर फूड" के रूप में पुनः लोकप्रियता मिल रही है। अब शहरी क्षेत्रों में भी लोग स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होकर अपने आहार में मिलेट्स को शामिल कर रहे हैं, जिससे इनकी मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत सरकार द्वारा भी मोटे अनाजों के महत्व को ध्यान में रखते हुए इनके उत्पादन, प्रसंस्करण एवं उपभोग को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ

एवं कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। वर्ष 2023 को "अंतरर्राष्ट्रीय मिलेट वर्ष" के रूप में मनाया जाना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिससे वैश्विक स्तर पर मोटे अनाजों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप किसानों, उपभोक्ताओं तथा उद्योगों के बीच इनकी स्वीकार्यता में वृद्धि हुई है।

आर्थिक दृष्टि से भी मोटे अनाज अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनकी खेती में कम लागत एवं कम जोखिम होने के कारण यह किसानों के लिए स्थिर आय का स्रोत बन सकती है। इसके अतिरिक्त, मोटे अनाजों के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन–जैसे आटा, बिस्कुट, रेडी–टू–ईट उत्पाद आदि–के माध्यम से ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है, जिससे रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। अतः उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मोटे अनाज केवल एक पारंपरिक खाद्य फसल नहीं हैं, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए एक सशक्त एवं स्थायी विकल्प हैं। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के संदर्भ में इनका महत्व और भी बढ़ जाता है। इसलिए आवश्यक है कि मोटे अनाजों के उत्पादन, प्रसंस्करण एवं उपभोग को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि सतत कृषि विकास, पर्यावरण संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य सुधार सुनिश्चित किया जा सके।

मोटे अनाजों का महत्व

मोटे अनाजों का महत्व बहुआयामी है, जो कृषि, पोषण, स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में इनका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता हैः

कृषि दृष्टिकोण से महत्वः मोटे अनाजों की खेती उन क्षेत्रों में भी संभव है जहाँ अन्य प्रमुख फसलें सफलतापूर्वक नहीं उगाई जा सकतीं। इनकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः

- कम वर्षा एवं सूखे की स्थिति में भी उत्पादन क्षमता
- उच्च तापमान सहनशीलता
- कम उर्वरक एवं रासायनिक इनपुट की आवश्यकता
- अल्प अवधि में फसल तैयार होना
- वर्शा आधारित कृषि के लिए उपयुक्त

पोषण दृष्टिकोण से महत्वः मोटे अनाज पोषण के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और इन्हें "न्यूट्री–सिरियल्स" के रूप में जाना जाता है। इनमें विभिन्न आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैंः

- उच्च मात्रा में प्रोटीन
- पर्याप्त आहार रेशा (डाइटरी फाइबर)
- खनिज तत्व : कैल्शियम, आयरन, जिंक
- विटामिन विशेष रूप से विटामिन B समूह

स्वास्थ्य दृष्टिकोण से महत्वः मोटे अनाज अनेक जीवनशैली संबंधी रोगों के नियंत्रण में सहायक होते हैंः

- मधुमेह नियंत्रण (कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स)
- हृदय रोगों के जोखिम में कमी
- मोटापा नियंत्रण
- पाचन तंत्र को सुदृढ़ बनाना

पर्यावरणीय महत्वः मोटे अनाज पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैंः

- कम जल की आवश्यकता के कारण जल संरक्षण
- कम रासायनिक उपयोग से मृदा एवं पर्यावरण की रक्षा
- जैव विविधता का संरक्षण
- सतत कृषि प्रणाली को बढ़ावा

आर्थिक महत्वः मोटे अनाज लघु एवं सीमांत किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी हैंः

- कम लागत में उत्पादन
- कम जोखिम वाली फसल
- स्थिर आय का स्रोत
- मूल्य संवर्धन के माध्यम से अतिरिक्त लाभ

सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्वः मोटे अनाज भारतीय परंपरा एवं संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इनसे जुड़े पारंपरिक व्यंजन एवं खाद्य आदतें आज भी प्रचलित हैं। इनका उपयोग न केवल पोषण के लिए, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण है।

अध्याय २

भारत और विश्व में मोटे अनाज का इतिहास

मोटे अनाज (Millets) का इतिहास मानव सभ्यता के विकास के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। ये फसलें न केवल प्रारंभिक कृषि प्रणाली का आधार रही हैं, बल्कि इन्होंने मानव के खान–पान, सांस्कृतिक विकास, पर्यावरणीय अनुकूलन एवं आर्थिक संरचना को भी प्रभावित किया है। विश्व के विभिन्न भागों में इनका स्वतंत्र रूप से वशीकरण (Domestication) होना इस बात का प्रमाण है कि ये फसलें मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अत्यंत उपयुक्त थीं।

1 भारत में मोटे अनाज का इतिहास

1.1 प्राचीन काल (लगभग 3000 ई.पू.–1000 ई.पू.)

भारत में मोटे अनाजों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। पुरातात्विक प्रमाणों के अनुसार, सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग 2600–1900 ई.पू.) में मोटे अनाजों की खेती की जाती थी। हरप्पा, मोहनजोदड़ो एवं लोथल जैसे स्थलों से प्राप्त अवशेषों में ज्वार एवं बाजरा के दानों के प्रमाण मिले हैं, जो इस बात का संकेत देते हैं कि उस समय ये फसलें मानव आहार का महत्वपूर्ण भाग थीं।

इसके पश्चात वैदिक काल (1500–600 ई.पू.) में भी कृषि प्रणाली का मुख्य आधार वर्षा पर निर्भर था। इस काल में मोटे अनाजों का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता था, क्योंकि ये कम जल एवं सीमित संसाधनों में भी उगाए जा सकते थे। ग्रामीण समुदायों में इनका उपयोग दैनिक भोजन के रूप में होता था तथा ये स्थानीय खाद्य परंपराओं का अभिन्न अंग बने रहे।

1.2 उत्तर प्राचीन एवं मध्यकालीन काल (600 ई.पू.–1700 ई.)

इस काल में मोटे अनाजों का उपयोग भारतीय उपमहाद्वीप में और अधिक व्यापक हो गया। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों जैसे दक्कन का पठार, राजस्थान का शुष्क क्षेत्र तथा मध्य भारत–में इनकी खेती स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई।

मौर्य काल (322–185 ई.पू.) एवं गुप्त काल (320–550 ई.) के दौरान कृषि प्रणाली का विस्तार हुआ, जिसमें मोटे अनाजों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस समय इन फसलों का उपयोग केवल खाद्य के रूप में ही नहीं, बल्कि पशु आहार एवं अन्य उपयोगों के लिए भी किया जाता था।

मध्यकाल (1200–1700 ई.) में मोटे अनाज ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार बने रहे। इस काल में पारंपरिक कृषि ज्ञान एवं स्थानीय बीजों का संरक्षण हुआ, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में मोटे अनाजों की अनेक देशी किस्में विकसित हुईं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी इनका विशेष महत्व था त्योहारों एवं पारंपरिक व्यंजनों में इनका व्यापक उपयोग होता था।

1.3 औपनिवेशिक काल (1757–1947 ई.)

औपनिवेशिक काल में भारतीय कृषि प्रणाली में बड़े बदलाव आए। ब्रिटिश शासन के दौरान नकदी फसलों जैसे कपास, नील एवं गन्ना को प्राथमिकता दी गई। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक खाद्य फसलों, विशेषकर मोटे अनाजों का क्षेत्रफल घटने लगा।

19वीं शताब्दी (1800–1900 ई.) के दौरान कई क्षेत्रों में खाद्य संकट उत्पन्न हुआ, क्योंकि कृषि उत्पादन नकदी फसलों की ओर अधिक केंद्रित हो गया था। फिर भी, शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मोटे अनाजों का महत्व बना रहा, क्योंकि ये कठिन परिस्थितियों में भी उत्पादन देते थे।

1.4 स्वतंत्रता पश्चात एवं हरित क्रांति काल (1947–1990 ई.)

स्वतंत्रता के बाद भारत में खाद्य सुरक्षा को प्राथमिकता दी गई। 1960 के दशक में हरित क्रांति (1965–1975 ई.) के तहत गेहूँ एवं धान की उच्च उत्पादक किस्मों को बढ़ावा मिला।

इसका प्रभाव मोटे अनाजों पर स्पष्ट रूप से देखा गयाः

- इनके क्षेत्रफल में उल्लेखनीय कमी आई
- उत्पादन एवं उत्पादकता में गिरावट हुई
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) में इनकी उपेक्षा हुई

सरकारी नीतियाँ मुख्यतः गेहूँ एवं चावल पर केंद्रित हो गईं, जिससे मोटे अनाजों का पारंपरिक महत्व धीरे–धीरे कम हो गया।

1.5 आधुनिक काल एवं पुनरुत्थान (2000 ई. के बाद)

21वीं सदी के प्रारंभ (2000 ई. के बाद) में मोटे अनाजों का महत्व पुनः बढ़ने लगा। इसके प्रमुख कारण हैंः

- स्वास्थ्य एवं पोषण के प्रति बढ़ती जागरूकता
- जलवायु परिवर्तन एवं जल संकट
- सतत कृषि की आवश्यकता

भारत सरकार ने वर्ष 2018 में मोटे अनाजों को Nutri-Cereals के रूप में मान्यता दी। इसके पश्चात इनके उत्पादन एवं उपभोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ प्रारंभ की गईं।

2 विश्व में मोटे अनाज का इतिहास

2.1 उत्पत्ति एवं प्रारंभिक विकास (7000 ई.पू.–2000 ई.पू.)

विश्व स्तर पर मोटे अनाजों का वशीकरण लगभग 5000–7000 वर्ष पूर्व हुआ। अफ्रीका को इनका प्रमुख उत्पत्ति केंद्र माना जाता हैः

- ज्वार – पूर्वोत्तर अफ्रीका (3000–2000 ई.पू.)
- बाजरा – पश्चिमी अफ्रीका (2500–2000 ई.पू.)

एशिया, विशेषकर चीन मेंः

- कंगनी – लगभग 4000 ई.पू.
- चेना – लगभग 3000 ई.पू.

इन फसलों का विकास स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप हुआ, जिससे ये अत्यधिक सहनशील बन गईं।

2.2 प्राचीन एवं मध्यकालीन विश्व (2000 ई.पू.–1700 ई.)

प्राचीन काल में मोटे अनाजों का उपयोग एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता था। चीन में इन्हें प्रमुख खाद्य फसलों में स्थान प्राप्त था।

मध्यकाल में व्यापार मार्गों विशेषकर सिल्क रूट के माध्यम से इनका प्रसार विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। अरब व्यापारियों ने इन फसलों को एशिया से यूरोप एवं अफ्रीका के अन्य भागों तक पहुँचाया।

इस काल में मोटे अनाज उन क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहे जहाँ जलवायु कठोर थी तथा अन्य फसलें उगाना कठिन था।

2.3 औद्योगिक एवं आधुनिक काल (1700 ई.–वर्तमान)

औद्योगिक क्रांति (18वीं–19वीं शताब्दी) के बाद कृषि प्रणाली में बड़े बदलाव आए। विकसित देशों में उच्च उत्पादकता वाली फसलों–जैसे गेहूँ एवं मक्का–को प्राथमिकता दी गई, जिससे मोटे अनाजों का महत्व कम हो गया।

हालांकि, अफ्रीका एवं एशिया के विकासशील देशों में ये फसलें खाद्य सुरक्षा का आधार बनी रहीं।

21वीं सदी में मोटे अनाजों का पुनरुत्थान हुआः

- वर्ष 2013–2020 के बीच वैश्विक स्तर पर "Smart Food" की अवधारणा विकसित हुई।
- वर्ष 2023 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा "International Year of Millets" घोषित किया गया।

इस पहल का उद्देश्य मोटे अनाजों के प्रति जागरूकता बढ़ाना तथा इनके उत्पादन एवं उपभोग को प्रोत्साहित करना था।

भारत एवं विश्व के संदर्भ में मोटे अनाजों का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि ये फसलें मानव सभ्यता के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। प्राचीन काल में ये खाद्य सुरक्षा का आधार थीं, मध्यकाल में इन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया, और आधुनिक काल में पुनः इनके महत्व को स्वीकार किया जा रहा है। हरित क्रांति के दौरान इनका महत्व कुछ हद तक कम हुआ, किंतु वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, पोषण असंतुलन एवं सतत कृषि की आवश्यकता के कारण मोटे अनाजों का पुनरुत्थान हो रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि मोटे अनाज न केवल अतीत की धरोहर हैं, बल्कि भविष्य की कृषि एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक सशक्त आधार भी हैं।

अध्याय 3

पोषक महत्व एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

3.1 प्रस्तावना

मोटे अनाज, जिन्हें वर्तमान में "श्रीअन्न" के रूप में पुनः स्थापित किया गया है, पोषण एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण खाद्य समूह के अंतर्गत आते हैं। प्राचीन समय में ये मानव आहार का प्रमुख अंग थे, किंतु आधुनिक कृषि एवं खाद्य प्रणाली के विकास के साथ इनका महत्व कुछ हद तक कम हो गया। वर्तमान में बढ़ती जीवनशैली संबंधी बीमारियों, कुपोषण, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी एवं असंतुलित आहार की समस्या के कारण इनका महत्व पुनः स्थापित हो रहा है। मोटे अनाजों में पाए जाने वाले पोषक तत्व न केवल ऊर्जा प्रदान करते हैं, बल्कि शरीर की विभिन्न जैव–रासायनिक क्रियाओं, हार्मोन संतुलन, कोशिका निर्माण एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। ये अनाज विशेष रूप से उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण हैं जहाँ संतुलित आहार की उपलब्धता सीमित है।

3.2 मोटे अनाजों का पोषक संघटन

मोटे अनाजों का पोषक संघटन अत्यंत संतुलित एवं समृद्ध होता है। इनमें प्रमुख रूप से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, आहार रेशा, विटामिन, खनिज तत्व तथा जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं।

3.2.1 मैक्रोन्यूट्रिएंट्स (Macronutrients)

(क) कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा आपूर्तिः मोटे अनाजों में लगभग 60–75% तक कार्बोहाइड्रेट पाए जाते हैं, जो शरीर के लिए प्रमुख ऊर्जा स्रोत होते हैं। इनका कार्बोहाइड्रेट मुख्यतः जटिल रूप में होता है, जिससे यह धीरे–धीरे पचता है और रक्त में ग्लूकोज का स्तर नियंत्रित रहता है। यह विशेषता इन्हें मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त बनाती है।

(ख) प्रोटीन एवं अमीनो अम्लः मोटे अनाजों में 7–12% तक प्रोटीन पाया जाता है। यद्यपि इनमें लाइसिन (Lysine) की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, किंतु मेथियोनिन (Methionine) जैसे आवश्यक अमीनो अम्ल उपस्थित होते हैं, जो अन्य

अनाजों में सीमित मात्रा में पाए जाते हैं। दालों के साथ इनका संयोजन करने पर यह संतुलित प्रोटीन प्रदान करते हैं।

(ग) वसा (Lipid): मोटे अनाजों में वसा की मात्रा सामान्यतः 1.5–5% के बीच होती है। इनमें उपस्थित असंतृप्त वसीय अम्ल (Unsaturated Fatty Acid) हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं।

3.2.2 सूक्ष्म पोषक तत्व

(क) खनिज तत्व

मोटे अनाज खनिज तत्वों के उत्कृष्ट स्रोत हैं:

- कैल्शियम – रागी में अत्यधिक (300–350 mg/100g तक)
- आयरन – बाजरा एवं कोदो में प्रचुर
- जिंक – प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए आवश्यक
- मैग्नीशियम – मांसपेशियों एवं तंत्रिका तंत्र के लिए महत्वपूर्ण
- फॉस्फोरस – हड्डियों एवं कोशिकीय ऊर्जा के लिए आवश्यक

(ख) विटामिन

मोटे अनाज विशेष रूप से विटामिन B–समूह के अच्छे स्रोत हैं:

- थायमिन (B1) – ऊर्जा चयापचय में सहायक
- राइबोफ्लेविन (B2) – कोशिकीय कार्यों में महत्वपूर्ण
- नियासिन (B3) – पाचन एवं तंत्रिका तंत्र के लिए आवश्यक

3.2.3 आहार रेशा एवं पाचन स्वास्थ्य

मोटे अनाजों में 8–15% तक आहार रेशा पाया जाता है, जो अन्य अनाजों की तुलना में अधिक है। यह रेशा दो प्रकार का होता है:

- घुलनशील
- अघुलनशील

यह पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने, कब्ज को रोकने तथा आंतों के स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक होता है।

3.2.4 फाइटोकेमिकल्स एवं एंटीऑक्सीडेंट्स

मोटे अनाजों में निम्नलिखित जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं:

- फेनोलिक यौगिक

- फ्लेवोनॉयड्स
- टैनिन

ये यौगिक शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करते हैं तथा कोशिकाओं को क्षति से बचाते हैं।

3.3 विभिन्न मोटे अनाजों का तुलनात्मक पोषण मूल्य

विभिन्न मिलेट्स का पोशण स्तर भिन्न होता हैः

- रागी – कैल्शियम का सर्वोत्तम स्रोत
- बाजरा – आयरन एवं ऊर्जा से भरपूर
- ज्वार – उच्च फाइबर एवं एंटीऑक्सीडेंट्स
- कोदो एवं कुटकी – कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स

यह विविधता इन्हें संतुलित आहार के लिए आदर्श बनाती है।

3.4 मानव स्वास्थ्य पर मोटे अनाजों का प्रभाव

3.4.1 मधुमेह नियंत्रणः मोटे अनाजों का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, जिससे यह रक्त शर्करा के स्तर को धीरे–धीरे बढ़ाते हैं। यह इंसुलिन संवेदनशीलता को सुधारने में सहायक होते हैं।

3.4.2 हृदय रोगः फाइबर एवं एंटीऑक्सीडेंट्स की उपस्थिति LDL (खराब कोलेस्ट्रॉल) को कम करने में सहायक होती है, जिससे हृदय रोगों का जोखिम कम होता है।

3.4.3 पाचन तंत्रः उच्च रेशा आंतों की गतिशीलता को बढ़ाता है तथा आंतों के माइक्रोबायोटा को संतुलित करता है।

3.4.4 मोटापा एवं वजन नियंत्रणः मोटे अनाजों का सेवन तृप्ति बढ़ाता है, जिससे कैलोरी सेवन कम होता है और वजन नियंत्रण में सहायता मिलती है।

3.4.5 हड्डियों एवं दंत स्वास्थ्यः रागी में उच्च कैल्शियम होने के कारण यह बच्चों, महिलाओं एवं वृद्धों के लिए अत्यंत लाभकारी है।

3.4.6 कैंसर विरोधी संभावनाएँः मोटे अनाजों में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट्स कोशिकाओं में होने वाले DNA क्षरण को कम कर सकते हैं, जिससे कैंसर के जोखिम में कमी आ सकती है।

3.4.7 रोग प्रतिरोधक क्षमताः जिंक, आयरन एवं फाइटोकेमिकल्स शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं।

3.5 जीवनशैली रोगों में भूमिकाः वर्तमान समय में मोटे अनाज निम्न रोगों के नियंत्रण में सहायक हैंः

- मधुमेह
- उच्च रक्तचाप
- हृदय रोग
- मोटापा
- पाचन विकार

3.6 पोषण सुरक्षा एवं जन स्वास्थ्य में योगदानः मोटे अनाज विशेष रूप से निम्न समूहों के लिए उपयोगी हैंः

- बच्चे (Child Nutrition)
- गर्भवती महिलाएँ
- वृद्ध व्यक्ति
- कुपोषित जनसंख्या

ये कुपोषण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में सहायक हैं।

मोटे अनाज पोषण, स्वास्थ्य एवं सतत जीवनशैली के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये न केवल ऊर्जा प्रदान करते हैं, बल्कि शरीर के समुचित विकास, रोगों की रोकथाम एवं दीर्घकालिक स्वास्थ्य संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान के रूप में मोटे अनाज एक प्रभावी, सुलभ एवं टिकाऊ विकल्प प्रस्तुत करते हैं। अतः इन्हें दैनिक आहार में शामिल करना तथा इनके उत्पादन एवं उपयोग को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है।

अध्याय ४

बाजरा (पर्ल मिलेट)

1. परिचय

बाजरा (Pearl Millet), भारत तथा विश्व के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। यह Poaceae (घास कुल) का सदस्य है और इसे प्रमुख रूप से कम वर्षा, उच्च तापमान तथा सीमांत भूमि में उगाया जाता है। बाजरा विश्व की प्राचीनतम फसलों में से एक है, जिसकी उत्पत्ति अफ्रीका के सहारा क्षेत्र में मानी जाती है। वहाँ से यह एशिया, विशेषकर भारत में फैली और आज यह देश के ग्रामीण एवं शुष्क क्षेत्रों की खाद्य सुरक्षा का एक प्रमुख आधार बन चुकी है। भारत बाजरा का सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जहाँ राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। बाजरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी उच्च सूखा सहनशीलता और कम इनपुट में अधिक उत्पादन देने की क्षमता है। यह फसल अत्यधिक तापमान (40°C तक) को सहन कर सकती है और कम वर्षा (300–500 मिमी) में भी अच्छी उपज देती है। यही कारण है कि यह सीमांत और वर्षा–आधारित कृषि के लिए अत्यंत उपयुक्त फसल मानी जाती है। बाजरा का पौधा मध्यम से ऊँचा (1.5–3 मीटर) होता है, जिसमें मोटा तना और लंबी पत्तियाँ होती हैं। इसका पुष्पक्रम एक घनी, बेलनाकार बाल के रूप में होता है, जिसमें असंख्य छोटे दाने लगे होते हैं।

पोषण की दृष्टि से बाजरा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह ऊर्जा, प्रोटीन, आहार रेशा (पिइमत), आयरन, जिंक और मैग्नीशियम का अच्छा स्रोत है। यह ग्लूटेन–फ्री होता है, इसलिए यह स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों और मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त आहार है। पारंपरिक रूप से बाजरा का उपयोग रोटी, खिचड़ी, दलिया और पेय पदार्थों में किया जाता है। आधुनिक समय में इससे बिस्कुट, कुकीज, मल्टीग्रेन उत्पाद, इंस्टेंट फूड और हेल्थ स्नैक्स भी तैयार किए जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में बाजरा एक "स्मार्ट फसल" के रूप में उभर रहा है, क्योंकि यह कम पानी, उच्च तापमान और सीमांत भूमि में भी स्थिर उत्पादन प्रदान करता है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल (फैमिली)

बाजरा की वैज्ञानिक पहचान और वर्गीकरण कृषि अनुसंधान, बीज उत्पादन तथा फसल प्रबंधन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वनस्पतिक नामः *Pennisetum glaucum* (syn. *Cenchrus americanus*)

कुलः Poaceae (घास कुल)

बाजरा घास कुल का एक प्रमुख अनाज है, जिसकी पहचान इसके घने और बेलनाकार पुष्पक्रम से होती है।

स्थानीय नामः

- हिंदीः बाजरा
- अंग्रेजीः *Pearl Millet*
- कन्नड़ः साज्जे
- तमिलः कंबु
- तेलुगुः सज्जा
- मराठीः बाजरी
- गुजरातीः बाजरी
- पंजाबीः बाजरा

3. पोषण मूल्य

बाजरा एक अत्यंत पौष्टिक अनाज है, जो ऊर्जा, प्रोटीन, फाइबर और खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है। इसे "गरीबों का भोजन" कहे जाने के बावजूद, आधुनिक समय में यह एक "सुपर फूड" के रूप में पुनः लोकप्रिय हो रहा है।

100 ग्राम बाजरा में पोषक तत्वः

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)	लाभ/महत्व
ऊर्जा	350–360 kcal	शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है
कार्बोहाइड्रेट	65–70 ग्राम	दैनिक ऊर्जा का मुख्य स्रोत
प्रोटीन	10–12 ग्राम	मांसपेशियों और ऊतकों के लिए आवश्यक
वसा	4–5 ग्राम	ऊर्जा और हार्मोन संतुलन
आहार रेशा	8–10 ग्राम	पाचन सुधार, कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण
आयरन	6–8 मि.ग्रा.	एनीमिया से बचाव
कैल्शियम	40–50 मि.ग्रा.	हड्डियों के लिए उपयोगी
मैग्नीशियम	130–140 मि.ग्रा.	तंत्रिका एवं मांसपेशी कार्य
जिंक	2–3 मि.ग्रा.	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है
विटामिन B	1–2 मि.ग्रा.	ऊर्जा उत्पादन और मस्तिष्क स्वास्थ्य

बाजरा न केवल पारंपरिक आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि आधुनिक स्वास्थ्यवर्धक आहार प्रणाली में भी इसका विशेष स्थान है। इसकी उच्च पोषण क्षमता, ग्लूटेन–फ्री प्रकृति और स्वास्थ्य लाभ इसे भविष्य का एक प्रमुख अनाज बनाते हैं।

4. वृद्धि हेतु जलवायु

बाजरा (पर्ल मिलेट) एक उष्णकटिबंधीय एवं अर्ध–शुष्क जलवायु की फसल है, जो अत्यधिक तापमान, कम वर्षा और सीमांत परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता इसकी सूखा सहनशीलता (Drought Tolerance) है, जिसके कारण यह उन क्षेत्रों में भी अच्छी उपज देती है जहाँ अन्य फसलें असफल हो जाती हैं। बाजरा की वृद्धि के लिए तापमान 25°C से 35°C के बीच आदर्श माना जाता है। बीज अंकुरण के लिए 20–25°C तापमान उपयुक्त होता है, जबकि पौधों की वृद्धि और विकास के लिए 30–35°C तापमान सर्वोत्तम होता है। यह फसल 40°C तक के उच्च तापमान को भी सहन कर सकती है, जो इसे गर्म और शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाता है।

बाजरा मुख्यतः कम वर्षा वाले क्षेत्रों की फसल है और इसके लिए 300–500 मिमी वार्षिक वर्षा पर्याप्त होती है। यह फसल वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। हालांकि, अत्यधिक वर्षा और जलभराव से इसकी जड़ों को नुकसान हो सकता है, जिससे फसल की वृद्धि प्रभावित होती है। आर्द्रता का भी बाजरा की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। मध्यम आर्द्रता पौधों के विकास के लिए उपयुक्त होती है, जबकि अत्यधिक आर्द्रता रोगों के प्रसार को बढ़ा सकती है। बाजरा एक लघु दिन फसल है, जिसमें पुष्पन और दाना भरने की प्रक्रिया दिन की अवधि पर निर्भर करती है। कम दिन की अवधि में पुष्पन जल्दी होता है, जबकि लंबी दिन अवधि में यह प्रक्रिया विलंबित हो सकती है।

5. मृदा

बाजरा की खेती के लिए मृदा का चयन और उसकी उचित तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह फसल विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, लेकिन उच्च उपज के लिए अच्छी जल निकासी वाली हल्की और उपजाऊ मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। बाजरा के लिए बलुई दोमट से लेकर दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। इसके अतिरिक्त यह फसल हल्की काली मिट्टी, लाल मिट्टी तथा सीमांत भूमि में भी उगाई जा सकती है। यह उन क्षेत्रों में भी अच्छी तरह उगती है जहाँ मिट्टी की उर्वरता कम होती है। मिट्टी का pH 6.0 से 7.5 के बीच आदर्श माना जाता है। हल्की अम्लीय से तटस्थ मिट्टी में बाजरा की जड़ें अच्छी तरह विकसित होती हैं और

पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। अत्यधिक क्षारीय या जलभराव वाली मिट्टी बाजरा के लिए उपयुक्त नहीं होती। बाजरा की जड़ प्रणाली गहरी और मजबूत होती है, जिससे यह मिट्टी की गहराई से पानी और पोषक तत्वों को अवशोषित कर सकती है। यही कारण है कि यह फसल सूखा सहनशील होती है और सीमांत क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

6. उन्नत किस्में

बाजरा की खेती में उन्नत किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उपज, रोग प्रतिरोधक क्षमता, अनुकूलन क्षमता और दानों की गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करता है। भारत में विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थानों द्वारा बाजरा की कई उन्नत किस्में और संकर विकसित किए गए हैं, जो विभिन्न जलवायु और मृदा परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में:

1. HHB–67 (Improved)

- जल्दी पकने वाली किस्म
- सूखा सहनशील
- कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त

2. HHB–94

- उच्च उपज देने वाली किस्म
- बेहतर दाना गुणवत्ता
- शुष्क क्षेत्रों में उपयुक्त

3. ICMV–221

- सूखा सहनशील
- स्थिर उत्पादन
- वर्षा आधारित खेती के लिए उपयुक्त

4. ICTP–8203 (Dhanashakti)

- उच्च आयरन और जिंक युक्त
- पोषण सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण
- मध्यम अवधि की किस्म

5. Raj–171

- राजस्थान और उत्तर भारत के लिए उपयुक्त
- उच्च उत्पादन क्षमता

6. MPMH–17

- संकर किस्म
- उच्च उपज और रोग प्रतिरोधक

7. GHB–558

- गुजरात के लिए विकसित संकर
- उच्च उत्पादन और अनुकूलन क्षमता

8. RHB–177

- सूखा सहनशील
- अच्छी दाना गुणवत्ता

उन्नत किस्मों का चयन बाजरा की खेती की सफलता का प्रमुख आधार है। उचित किस्म का चयन करके किसान अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता और अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

7. बुवाई का समय

बाजरा (पर्ल मिलेट) की सफल खेती के लिए बुवाई का उचित समय अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह अंकुरण, पौधों की स्थापना, वृद्धि तथा अंतिम उपज को सीध ो प्रभावित करता है। बाजरा एक खरीफ फसल है, जिसकी बुवाई मुख्य रूप से मानसून के आगमन के साथ की जाती है। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में इसकी बुवाई जून से जुलाई के मध्य की जाती है, जब खेत में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो जाती है। समय पर बुवाई करने से बीजों का अंकुरण समान और तीव्र होता है तथा पौधों को प्रारंभिक अवस्था में आवश्यक नमी प्राप्त होती है, जिससे उनकी वृद्धि संतुलित रहती है।

कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, बाजरा की बुवाई मई के अंत या जून के प्रारंभ में भी की जा सकती है। वहीं, वर्षा में विलंब होने की स्थिति में बुवाई जुलाई के अंत तक की जा सकती है, किंतु अत्यधिक देर से बुवाई करने पर फसल की अवधि घट जाती है और उपज में कमी आ सकती है। बुवाई सामान्यतः कतारों में की जाती है, जिसमें कतार से कतार की दूरी 45 से 60 सेंटीमीटर तथा पौधों के बीच की दूरी 10 से 15 सेंटीमीटर रखी जाती है। बीजों को 2 से 4 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना उपयुक्त माना जाता है।

बाजरा की बुवाई के लिए बीज दर सामान्यतः 3 से 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होती है, जबकि संकर किस्मों के लिए यह 2.5 से 3 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होती है। बीजों का फफूंदनाशकों जैसे कार्बेन्डाजिम या थिरम से उपचार तथा जैव उर्वरकों जैसे एजोटोबैक्टर एवं पीएसबी के साथ उपचार करने से अंकुरण में सुधार होता है और प्रारंभिक रोगों से सुरक्षा मिलती है। इस प्रकार, समय पर और वैज्ञानिक विधि से की गई बुवाई बाजरा की उच्च उपज और बेहतर गुणवत्ता के लिए आधार प्रदान करती है।

8. सिंचाई

बाजरा एक सूखा सहनशील फसल है, जो कम वर्षा और सीमित जल उपलब्धता में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली मिट्टी की निचली परतों से नमी अवशोषित करने में सक्षम होती है, जिससे यह वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देती है। हालांकि, सिंचित परिस्थितियों में उचित और संतुलित सिंचाई प्रबंधन अपनाने से फसल की वृद्धि, दाना निर्माण तथा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। सामान्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में बाजरा को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन यदि वर्षा में कमी हो तो फसल के महत्वपूर्ण विकास चरणों पर सिंचाई देना आवश्यक हो जाता है। अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि की अवस्था में मिट्टी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है, जिससे पौधों की स्थापना अच्छी तरह हो सके। इसके अतिरिक्त गांठ बनने, पुष्पन तथा दाना भरने की अवस्थाएँ फसल के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं, और इन अवस्थाओं पर सिंचाई देने से दानों का आकार, वजन और गुणवत्ता बेहतर होती है।

सिंचित परिस्थितियों में सामान्यतः 2 से 4 सिंचाइयाँ पर्याप्त होती हैं, जिनका अंतराल 15 से 20 दिनों के बीच रखा जाता है। सिंचाई की विधि के रूप में सतही सिंचाई, नाली सिंचाई तथा आधुनिक ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। सिंचाई करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि खेत में जलभराव न हो, क्योंकि इससे जड़ों का सड़ना और पौधों का गिरना जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। नियंत्रित और आवश्यकता अनुसार सिंचाई करना बाजरा की सफल खेती के लिए अत्यंत आवश्यक है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

बाजरा की फसल में उच्च उपज और गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है। यद्यपि यह फसल कम उर्वरता वाली मिट्टी में भी उगाई जा सकती है, फिर भी उचित मात्रा में पोषक तत्वों की उपलब्धता से इसकी वृद्धि, विकास और उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है। नाइट्रोजन,

फॉस्फोरस और पोटाश बाजरा के लिए मुख्य पोषक तत्व हैं। नाइट्रोजन पौधों की हरित वृद्धि, पत्तियों और तनों के विकास के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी से पौधे कमजोर और पीले हो जाते हैं। सामान्यतः 60 से 80 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, जिसमें से आधी मात्रा बुवाई के समय और शेष आधी मात्रा 30 से 35 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में दी जाती है।

फॉस्फोरस जड़ों के विकास तथा पुष्पन और दाना निर्माण के लिए महत्वपूर्ण होता है। इसकी उचित मात्रा दानों के आकार और संख्या को बढ़ाती है। सामान्यतः 30 से 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फॉस्फोरस बुवाई के समय देना उपयुक्त रहता है। पोटाश पौधों की संरचनात्मक मजबूती, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा दाना भरने की प्रक्रिया में सहायक होता है, जिसके लिए 20 से 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पोटाश का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, आयरन और बोरॉन भी फसल के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। इनकी कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उत्पादन घट सकता है। इसलिए आवश्यकता अनुसार इन तत्वों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

जैविक उर्वरकों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग मिट्टी की उर्वरता, संरचना तथा जल धारण क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है। सामान्यतः 5 से 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद का प्रयोग लाभकारी होता है। इसके साथ ही जैव उर्वरकों जैसे एजोटोबैक्टर और पीएसबी का उपयोग करने से नाइट्रोजन स्थिरीकरण और फॉस्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

10. खरपतवार प्रबंधन

बाजरा की फसल में खरपतवारों का नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि ये फसल के साथ पोषक तत्वों, जल, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। विशेष रूप से फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों का प्रकोप अधिक हानिकारक होता है, जब पौधे छोटे और कमजोर होते हैं। यदि समय पर खरपतवारों का नियंत्रण न किया जाए, तो यह फसल की वृद्धि को बाधित करते हैं और उपज में उल्लेखनीय कमी ला सकते हैं। बाजरा के खेतों में सामान्यतः विभिन्न प्रकार के चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार, घास कुल के खरपतवार तथा कुछ जड़ वाले खरपतवार पाए जाते हैं। ये खरपतवार तेजी से बढ़ते हैं और फसल के साथ प्रतिस्पर्धा कर उसकी पोषण क्षमता को कम कर देते हैं। इसलिए फसल के प्रारंभिक 30–40 दिनों को खरपतवार नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण अवधि माना जाता है।

खरपतवार प्रबंधन के लिए सांस्कृतिक, यांत्रिक और रासायनिक विधियों का समेकित उपयोग करना सबसे प्रभावी तरीका है। सांस्कृतिक विधियों में समय पर

बुवाई, उचित कतार दूरी तथा संतुलित उर्वरक प्रबंधन शामिल हैं, जिससे फसल तेजी से बढ़कर खरपतवारों पर प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त बना लेती है। यांत्रिक विधियों के अंतर्गत बुवाई के 15–20 दिन बाद पहली निराई–गुड़ाई तथा 30–35 दिन बाद दूसरी निराई करना लाभकारी होता है। इससे खरपतवारों की वृद्धि नियंत्रित होती है और मिट्टी भी भुरभुरी बनी रहती है। जहाँ खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है, वहाँ रासायनिक नियंत्रण का भी सहारा लिया जा सकता है। बुवाई के तुरंत बाद या अंकुरण से पहले उपयुक्त प्री–इमर्जेंस हर्बिसाइड का छिड़काव प्रभावी रहता है। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता अनुसार पोस्ट–इमर्जेंस हर्बिसाइड का उपयोग भी किया जा सकता है, किंतु इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक और अनुशंसित मात्रा में ही करना चाहिए।

11. फसल सुरक्षा

बाजरा की फसल यद्यपि अपेक्षाकृत सहनशील होती है, फिर भी विभिन्न कीट एवं रोग इसके विकास, दाना निर्माण और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। फसल के विभिन्न विकास चरणों–अंकुरण, वृद्धि, पुष्पन एवं दाना भरने–में इनका प्रकोप देखा जा सकता है। अतः फसल सुरक्षा के लिए नियमित निरीक्षण, समय पर पहचान और समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन का पालन अत्यंत आवश्यक है।

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

बाजरा की फसल में कई प्रकार के कीट पाए जाते हैं, जो पौधों के विभिन्न भागों को नुकसान पहुंचाते हैं। ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं, तनों को खोखला करते हैं या दानों को क्षति पहुँचाते हैं, जिससे फसल की उपज और गुणवत्ता प्रभावित होती है। बाजरा में प्रमुख कीटों में तना छेदक, शूट फ्लाई, एफिड और आर्मी वर्म शामिल हैं। तना छेदक कीट की सुंडी तने के अंदर प्रवेश कर उसे खोखला कर देती है, जिससे पौधे मुरझा जाते हैं और "डेड हार्ट" लक्षण दिखाई देते हैं। शूट फ्लाई विशेष रूप से प्रारंभिक अवस्था में पौधों को प्रभावित करती है और अंकुरित पौधों को नष्ट कर देती है। एफिड पत्तियों का रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। आर्मी वर्म पत्तियों को खाकर फसल को व्यापक नुकसान पहुंचाते हैं।

इन कीटों के प्रबंधन के लिए समेकित उपाय अपनाना आवष्यक है। समय पर बुवाई, संतुलित उर्वरक प्रबंधन और खेत की नियमित निगरानी से कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। जैविक नियंत्रण के अंतर्गत नीम आधारित उत्पादों तथा Bacillus thuringiensi जैसे जैव कीटनाषकों का उपयोग प्रभावी होता है। इसके अतिरिक्त, प्रकाष प्रपंच और फेरोमोन ट्रैप का उपयोग भी कीट नियंत्रण में सहायक होता है। आवश्यकता होने पर अनुशंसित रासायनिक कीटनाशकों का सीमित और सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

बाजरा की फसल में विभिन्न प्रकार के रोग भी पाए जाते हैं, जो मुख्यतः फफूंदजनित होते हैं और पत्तियों, तनों तथा दानों को प्रभावित करते हैं। प्रमुख रोगों में डाउनी मिल्ड्यू, एर्गोट, स्मट तथा पत्ती धब्बा रोग शामिल हैं। डाउनल मिल्ड्यू रोग में पत्तियों पर पीले या सफेद धब्बे बनते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। एर्गोट रोग में दानों के स्थान पर काले या बैंगनी रंग के कठोर संरचनाएँ बन जाती हैं, जिससे दाने अनुपयोगी हो जाते हैं। स्मट रोग में पुष्पक्रम काले पाउडर में बदल जाता है, जिससे दाना उत्पादन प्रभावित होता है। पत्ती धब्बा रोग में पत्तियों पर भूरे धब्बे बनते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इन रोगों के नियंत्रण के लिए रोगरोधी किस्मों का चयन, स्वस्थ और प्रमाणित बीज का उपयोग तथा बीज उपचार अत्यंत आवश्यक है। फसल चक्र अपनाने से मिट्टी में रोगजनकों की संख्या कम होती है। खेत में उचित जल निकासी बनाए रखना और संतुलित उर्वरक प्रबंधन करना भी रोगों की रोकथाम में सहायक होता है। आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित फफूंदनाशकों का छिड़काव करके रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

बाजरा की फसल में कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण न करने पर उपज और गुणवत्ता में गंभीर हानि हो सकती है। समेकित प्रबंधन तकनीकों को अपनाकर इन समस्याओं को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। जैविक, सांस्कृतिक और रासायनिक उपायों के संतुलित उपयोग से न केवल फसल सुरक्षित रहती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ कृषि प्रणाली को भी बढ़ावा मिलता है।

12. उपज

बाजरा (पर्ल मिलेट) की फसल की उपज अनेक कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें प्रमुख रूप से उन्नत किस्मों का चयन, मृदा की उर्वरता, जलवायु परिस्थितियाँ, बुवाई का समय, सिंचाई प्रबंधन, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा कीट एवं रोग नियंत्रण शामिल हैं। इन सभी कारकों का संतुलित एवं वैज्ञानिक प्रबंधन करने पर बाजरा की उपज और दानों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

सामान्य परिस्थितियों में बाजरा की औसत उपज लगभग 1.5 से 2.5 टन प्रति हेक्टेयर होती है। वर्षा आधारित और सीमांत क्षेत्रों में, जहाँ संसाधनों की कमी होती है, यह उपज लगभग 1.0 से 1.8 टन प्रति हेक्टेयर तक सीमित रह सकती है। इसके विपरीत, सिंचित क्षेत्रों तथा उन्नत कृषि प्रथाओं के उपयोग से बाजरा की उपज 2.5 से 3.5 टन प्रति हेक्टेयर या उससे अधिक भी प्राप्त की जा सकती है।

उपज पर जलवायु का विशेष प्रभाव पड़ता है। अनुकूल तापमान, पर्याप्त वर्शा और संतुलित आर्द्रता की स्थिति में फसल में पुष्पन और दाना भरने की प्रक्रिया बेहतर होती है, जिससे दाने बड़े, भारी और पोषक तत्वों से भरपूर बनते हैं। इसके विपरीत, अत्यधिक गर्मी, सूखा या असमय वर्षा फसल की वृद्धि को प्रभावित करते हैं और उपज में कमी ला सकते हैं।

किस्म के अनुसार भी उपज में अंतर पाया जाता है। उन्नत और संकर किस्में सामान्यतः अधिक उत्पादन देती हैं और इनकी उत्पादन क्षमता 2.5 से 3.5 टन प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है, जबकि पारंपरिक किस्मों की उपज अपेक्षाकृत कम होती है। इसके अतिरिक्त, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, समय पर बुवाई, उचित पौध दूरी तथा प्रभावी खरपतवार एवं फसल सुरक्षा उपायों से उपज में 15 से 25 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है।

उच्च गुणवत्ता वाले बाजरा दाने समान आकार, उचित वजन और अच्छे रंग के होते हैं, जो बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करते हैं। अतः उत्पादन के साथ–साथ गुणवत्ता पर भी ध्यान देना आवश्यक है, जिससे किसानों को अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो सके। इस प्रकार, वैज्ञानिक एवं समेकित कृषि तकनीकों को अपनाकर बाजरा की फसल को अधिक उत्पादक और लाभकारी बनाया जा सकता है।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

बाजरा एक बहुउपयोगी और अत्यंत पोषण–संपन्न अनाज है, जिसका उपयोग पारंपरिक तथा आधुनिक दोनों प्रकार के खाद्य उत्पादों में व्यापक रूप से किया जाता है। वर्तमान समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण बाजरा को "सुपर फूड" के रूप में पुनः महत्व प्राप्त हो रहा है। इसके प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के माध्यम से न केवल इसकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है, बल्कि किसानों और उद्यमियों के लिए आय के नए अवसर भी सृजित किए जा सकते हैं। बाजरा को कच्चे रूप में बेचने की अपेक्षा यदि इसे विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों में परिवर्तित करके बाजार में प्रस्तुत किया जाए, तो इसका आर्थिक मूल्य कई गुना बढ़ जाता है। बाजरा से आटा तैयार किया जाता है, जिसका उपयोग रोटी, पराठा, दलिया और पारंपरिक खाद्य पदार्थों में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, बाजरा से बने आटे का उपयोग बिस्कुट, कुकीज, ब्रेड और अन्य बेकरी उत्पादों के निर्माण में भी किया जा रहा है, जो उच्च फाइबर और पोशण से भरपूर होते हैं।

आधुनिक खाद्य उद्योग में बाजरा से रेडी–टू–ईट और रेडी–टू–कुक उत्पादों का निर्माण तेजी से बढ़ रहा है, जैसे इंस्टेंट खिचड़ी, उपमा मिक्स, दलिया और हेल्थ मिक्स। इसके अलावा, बाजरा आधारित नूडल्स, पास्ता और स्नैक्स भी

बाजार में लोकप्रिय हो रहे हैं, जो ग्लूटेन–फ्री और स्वास्थ्यवर्धक विकल्प प्रदान करते हैं। बाजरा को अन्य अनाजों जैसे ज्वार, रागी और गेहूं के साथ मिलाकर मल्टीग्रेन उत्पाद भी तैयार किए जाते हैं, जिनका पोषण मूल्य अधिक होता है और बाजार में इनकी मांग लगातार बढ़ रही है। इसके साथ ही बाजरा से ऊर्जा बार, हेल्थ ड्रिंक और पोषण पूरक भी बनाए जा रहे हैं, जो शहरी उपभोक्ताओं के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय हैं।

मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसानों को कई लाभ प्राप्त होते हैं। इससे उन्हें कच्चे अनाज की तुलना में अधिक मूल्य मिलता है, उत्पाद की शेल्फ लाइफ बढ़ती है और बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता भी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, प्रसंस्करण उद्योग के विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। बाजरा के उत्पादों की आकर्षक पैकेजिंग, ब्रांडिंग तथा जैविक और ग्लूटेन–फ्री प्रमाणन के माध्यम से इनकी बाजार मांग और मूल्य में और अधिक वृद्धि की जा सकती है। किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से सामूहिक प्रसंस्करण और विपणन भी लाभकारी सिद्ध होता है। अंततः बाजरा के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से इस पारंपरिक फसल को आधुनिक खाद्य प्रणाली से जोड़ा जा सकता है, जिससे पोषण सुरक्षा, आर्थिक लाभ और टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा मिलता है।

अध्याय ५

रागी / नाचनी (फिंगर मिलेट)

1. परिचय

रागी या नाचनी, इसे विशेष रूप से अफ्रीका और भारत के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में हजारों वर्शों से उगाया जाता रहा है। ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं कि रागी की उत्पत्ति पूर्वी अफ्रीका (इथियोपिया क्षेत्र) में हुई थी, जहाँ से यह भारत और अन्य एशियाई देशों में फैली। भारत में रागी की खेती विशेष रूप से कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा, महाराष्ट्र, उत्तराखंड और हिमालयी क्षेत्रों में की जाती है। कर्नाटक भारत में रागी का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। यह फसल कम पानी, सीमांत भूमि और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है, जिससे यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। रागी की विशेषता इसका विशिष्ट पुष्पक्रम है, जो हाथ की उंगलियों की तरह फैला हुआ होता है, इसलिए इसे "फिंगर मिलेट" कहा जाता है। इसके दाने छोटे, गोल और भूरे–लाल रंग के होते हैं। यह फसल सामान्यतः 90–120 दिनों में पक जाती है और बहुफसली प्रणाली में आसानी से शामिल की जा सकती है। पोषण की दृष्टि से रागी अत्यंत समृद्ध है। इसमें विशेष रूप से कैल्शियम की मात्रा बहुत अधिक होती है, जो अन्य अनाजों की तुलना में कई गुना अधिक है। इसके अलावा इसमें प्रोटीन, आहार रेशा, आयरन, फॉस्फोरस और विटामिन बी–समूह प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण सीलिएक रोगियों, मधुमेह रोगियों और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के लिए आदर्श आहार है।

रागी का उपयोग पारंपरिक रूप से रोटी, दलिया, खिचड़ी, रागी मड्डे (दक्षिण भारत), पेज और पेय पदार्थों में किया जाता है। आधुनिक समय में इससे बिस्कुट, कुकीज, हेल्थ ड्रिंक्स, बेबी फूड, नूडल्स और मल्टीग्रेन उत्पाद बनाए जा रहे हैं। रागी की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी दीर्घ भंडारण क्षमता है। इसके दाने कई

वर्षों तक बिना खराब हुए सुरक्षित रखे जा सकते हैं, जिससे यह खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण फसल बन जाती है। जलवायु परिवर्तन के वर्तमान संदर्भ में, रागी एक टिकाऊ, कम इनपुट वाली और पोषण सुरक्षा प्रदान करने वाली फसल के रूप में उभर रही है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

रागी की वैज्ञानिक पहचान और वर्गीकरण कृषि अनुसंधान, बीज चयन और फसल प्रबंधन के लिए अत्यंत आवष्यक है।

- वनस्पतिक नामः *Eleusine coracana*
- कुलः Poaceae (घास कुल)

रागी घास कुल की एक प्रमुख मिलेट फसल है, जिसकी पहचान इसके विशिष्ट उंगलीनुमा पुष्पक्रम से की जाती है।

स्थानीय नामः

- हिंदीः रागी / मडुआ
- अंग्रेजीः Finger Millet
- कन्नड़ः रागी
- तमिलः केझवरगु
- तेलुगुः रागुलु
- मराठीः नाचनी
- गुजरातीः नाचणी
- बंगालीः मडुआ
- नेपालीः कोदो

3. पोषण मूल्य

रागी एक अत्यंत पोषण–संपन्न अनाज है, जिसे "कैल्शियम का भंडार" कहा जाता है।

100 ग्राम रागी में पोषक तत्वः

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)	लाभ/महत्व
ऊर्जा	320–340 kcal	शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है
कार्बोहाइड्रेट	65–70 ग्राम	ऊर्जा का मुख्य स्रोत
प्रोटीन	7–9 ग्राम	मांसपेशियों और ऊतकों के लिए आवश्यक
वसा	1–2 ग्राम	ऊर्जा और हार्मोन संतुलन
आहार रेशा	10–12 ग्राम	पाचन सुधार, कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण
आयरन	3–4 मि.ग्रा.	एनीमिया से बचाव
कैल्शियम	300–350 मि.ग्रा.	हड्डियों और दांतों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण
मैग्नीशियम	130–140 मि.ग्रा.	तंत्रिका एवं मांसपेशी कार्य
फॉस्फोरस	280–300 मि.ग्रा.	हड्डियों और ऊर्जा चक्र
विटामिन B	1–2 मि.ग्रा.	ऊर्जा उत्पादन और मस्तिष्क स्वास्थ्य

स्वास्थ्य लाभः

- हड्डियों को मजबूत बनाता है (उच्च कैल्शियम)
- मधुमेह नियंत्रण में सहायक (Low Glycemic Inde)
- पाचन तंत्र को सुधारता है
- एनीमिया से बचाव
- वजन नियंत्रण में सहायक
- बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों के लिए अत्यंत लाभकारी

4. वृद्धि हेतु जलवायु

रागी एक उष्णकटिबंधीय और अर्ध–शुष्क जलवायु की फसल है, जो विविध पर्यावरणीय परिस्थितियों में उगाई जा सकती है। यह विशेष रूप से सूखा सहनशील (drought tolerant) और कम पानी की आवश्यकता वाली फसल है। रागी की फसल 20°C से 30°C तापमान के बीच सर्वोत्तम वृद्धि करती है। बीज अंकुरण के लिए 20–25°C तापमान उपयुक्त होता है, जबकि पौधों की वृद्धि और विकास के लिए 25–30°C तापमान आदर्श माना जाता है। अत्यधिक ठंड या पाला फसल के लिए हानिकारक होता है, जबकि अत्यधिक गर्मी (35°C से अधिक) भी दाना बनने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है।

रागी मध्यम वर्शा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगती है। इसके लिए 500–1000 मिमी वार्षिक वर्षा पर्याप्त होती है। यह फसल वर्षा–आधारित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, क्योंकि इसकी जड़ प्रणाली गहरी होती है, जो मिट्टी की गहराई से नमी प्राप्त कर सकती है। यह फसल विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उगाई जा सकती है–समतल क्षेत्रों से लेकर 2000 मीटर ऊँचाई तक। पहाड़ी क्षेत्रों में भी यह फसल सफलतापूर्वक उगाई जाती है। रागी एक लघु दिन की फसल है, जिसका पुष्पन कम दिन की अवधि में होता है। अधिक आर्द्रता और मध्यम तापमान फसल की वृद्धि के लिए अनुकूल होते हैं, जबकि अत्यधिक वर्षा और जलभराव से जड़ों को नुकसान हो सकता है।

5. मृदा

रागी की सफल खेती के लिए उपयुक्त मृदा का चयन और उसकी वैज्ञानिक तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। रागी एक बहुमुखी फसल है, जो विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, लेकिन उच्च उत्पादन के लिए अच्छी जल निकासी वाली उपजाऊ मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

रागी के लिए दोमट से लेकर बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। इसके अलावा यह लाल मिट्टी, हल्की काली मिट्टी तथा पहाड़ी क्षेत्रों की मिट्टी में भी अच्छी तरह उगाई जा सकती है। यह फसल सीमांत और कम उर्वरता वाली भूमि में भी उगाई जा सकती है, लेकिन अच्छी उपज के लिए मिट्टी में पर्याप्त जैविक पदार्थ होना आवश्यक है। मिट्टी का pH 5.0 से 7.5 के बीच होना आदर्श माना जाता है। हल्की अम्लीय से तटस्थ मिट्टी में रागी की जड़ें अच्छी तरह विकसित होती हैं और पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। अत्यधिक क्षारीय या जलभराव वाली मिट्टी में इसकी वृद्धि प्रभावित होती है। रागी की जड़ प्रणाली गहरी और सशक्त होती है, जिससे यह मिट्टी की गहराई से नमी और पोषक तत्व प्राप्त कर सकती है। यही कारण है कि यह फसल सूखा सहनशील होती है।

मृदा तैयारीः

- पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से की जाती है।
- इसके बाद 2–3 बार हल्की जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बनाया जाता है।
- खेत को समतल करना आवश्यक है, जिससे जल प्रबंधन आसान हो सके।

6. उन्नत किस्में

रागी की खेती में उन्नत किस्मों का चयन उत्पादन, गुणवत्ता और रोग

प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित किस्में विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के लिए उपयुक्त होती हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में:

1. **GPU–28** – यह उच्च उपज देने वाली किस्म है, जिसकी फसल अवधि लगभग 100–105 दिन होती है। यह सूखा सहनशील और विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।
2. **GPU–67** – यह किस्म ब्लास्ट रोग के प्रति सहनशील है और उच्च उत्पादन देती है। इसके दाने अच्छे आकार और गुणवत्ता के होते हैं।
3. **PR–202** – मध्यम अवधि की किस्म, जो स्थिर उत्पादन और अच्छे पोषण मूल्य के लिए जानी जाती है।
4. **VL–149** – पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म। यह ठंडी जलवायु में भी अच्छी वृद्धि करती है।
5. **CO–13** – दक्षिण भारत में प्रचलित किस्म, जो उच्च उपज और बेहतर अनुकूलन क्षमता के लिए जानी जाती है।
6. **Indaf–5** – यह किस्म सूखा सहनशील और कम उर्वरता वाली भूमि के लिए उपयुक्त है।
7. **MR–1** – मध्यम अवधि की किस्म, जो अच्छी गुणवत्ता वाले दाने प्रदान करती है।
8. **GPU–45** – यह किस्म रोग प्रतिरोधक और उच्च उपज देने वाली है।

7. बुवाई का समय

रागी की फसल में सही समय पर बुवाई करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इससे अंकुरण, वृद्धि, पुष्पन और दाना भरने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

रागी मुख्यतः खरीफ मौसम की फसल है और इसकी बुवाई मानसून के आगमन के साथ की जाती है।

बुवाई का समयः

- खरीफ (वर्षा आधारित): जून से जुलाई
- रबी (सिंचित क्षेत्रों में): अक्टूबर से नवम्बर
- जायद (कुछ क्षेत्रों में): फरवरी से मार्च

समय पर बुवाई करने से फसल को पर्याप्त नमी और अनुकूल तापमान मिलता है, जिससे अंकुरण और वृद्धि बेहतर होती है। देर से बुवाई करने पर उपज में कमी आ सकती है।

बीज दर और विधिः

- बीज दरः 8–12 किग्रा हेक्टेयर
- गहराईः 2–3 सेमी
- कतार दूरीः 25–30 सेमी
- पौधे से पौधे की दूरीः 8–10 सेमी

रागी की बुवाई छिड़काव विधिया कतारबद्ध विधि से की जा सकती है। कतारबद्ध बुवाई अधिक लाभकारी होती है, क्योंकि इससे निराई–गुड़ाई और पोशक तत्व प्रबंधन आसान होता है।

8. सिंचाई

रागी (फिंगर मिलेट) एक सूखा सहनशील फसल है, जो कम जल उपलब्धता में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी गहरी और सशक्त जड़ प्रणाली मिट्टी की गहराई से नमी प्राप्त करने में सक्षम होती है, जिससे यह वर्षा–आधारित क्षेत्रों में भी अच्छी उपज देती है। फिर भी, वैज्ञानिक सिंचाई प्रबंधन अपनाने से फसल की उत्पादकता और दानों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

सिंचाई की आवश्यकताः

- वर्षा आधारित क्षेत्रों में सामान्यतः अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती।
- सिंचित क्षेत्रों में 2–4 सिंचाई पर्याप्त मानी जाती हैं।
- हल्की मिट्टी में सिंचाई की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि भारी मिट्टी में कम सिंचाई पर्याप्त होती है।

महत्वपूर्ण सिंचाई अवस्थाएँः

रागी की फसल में निम्न अवस्थाएँ जल की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैंः

1. अंकुरण अवस्थाः बुवाई के बाद मिट्टी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है, जिससे अंकुरण समान रूप से हो सके।
2. प्रारंभिक वृद्धि अवस्थाः इस समय पौधों की जड़ और पत्तियों का विकास होता है, जिसके लिए पर्याप्त नमी आवश्यक है।

3. पुष्पन अवस्थाः यह सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। इस समय जल की कमी से फूल गिर सकते हैं और दाना बनने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।
4. दाना भरने की अवस्थाः इस अवस्था में सिंचाई करने से दानों का आकार, वजन और गुणवत्ता बेहतर होती है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

रागी की फसल के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है, जिससे पौधों की वृद्धि, विकास, दाना निर्माण और उपज में वृद्धि सुनिश्चित की जा सके। यद्यपि रागी कम उर्वरता वाली भूमि में भी उगाई जा सकती है, लेकिन उचित उर्वरक प्रबंधन से उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार होता है।

मुख्य पोषक तत्व :

1. नाइट्रोजनः

- मात्राः 40–60 किग्रा/हेक्टेयर
- कार्यः पत्तियों और तनों की वृद्धि में सहायक

प्रयोग विधिः

- 50: बुवाई के समय
- 50: टॉप ड्रेसिंग (25–30 दिन बाद)

2. फॉस्फोरसः

- मात्राः 30–40 किग्रा/हेक्टेयर
- कार्यः जड़ों के विकास और दाना बनने में सहायक
- प्रयोगः बुवाई के समय मिट्टी में मिलाकर

3. पोटाशः

- मात्राः 20–30 किग्रा/हेक्टेयर
- कार्यः पौधों की मजबूती, रोग प्रतिरोधक क्षमता और दाना भरने में सहायक

सूक्ष्म पोषक तत्वः रागी में निम्न सूक्ष्म तत्व भी महत्वपूर्ण हैंः

- जिंक– पौध वृद्धि और एंजाइम क्रियाओं के लिए
- बोरॉन– फूल और दाना बनने के लिए
- आयरन– क्लोरोफिल निर्माण के लिए

इनकी कमी होने पर पत्तियों का पीला पड़ना, वृद्धि में कमी और दाना बनने में बाधा देखी जा सकती है।

जैविक उर्वरक का उपयोगः

- गोबर की खादः 5–10 टन/हेक्टेयर
- वर्मी–कम्पोस्टः 2–3 टन/हेक्टेयर

जैविक खाद मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ाती है।

10. खरपतवार प्रबंधन

रागी की फसल में खरपतवार एक प्रमुख समस्या हैं, जो फसल के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि समय पर इनका नियंत्रण न किया जाए, तो उपज में 20–40ः तक कमी हो सकती है। विशेष रूप से प्रारंभिक 30–40 दिन रागी की फसल के लिए अत्यंत संवेदनशील होते हैं, जब खरपतवार तेजी से बढ़ते हैं।

प्रमुख खरपतवारः

- घास वर्गीय खरपतवार
- चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
- सेज

खरपतवार प्रबंधन की विधियाँः

1. सांस्कृतिक विधियाँः

- समय पर बुवाई
- कतारबद्ध बुवाई
- उचित पौध दूरी बनाए रखना
- फसल चक्र अपनाना

2. यांत्रिक/भौतिक विधियाँः

- हाथ से निराईः
- पहली निराईः 15–20 दिन बाद
- दूसरी निराईः 30–35 दिन बाद
- कुल्टीवेटर/खुरपी का उपयोग

11. फसल सुरक्षा

रागी (फिंगर मिलेट) की फसल अपेक्षाकृत सहनशील मानी जाती है, फिर भी विभिन्न कीट एवं रोग फसल की वृद्धि, दाना निर्माण और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। फसल के विभिन्न चरणों–अंकुरण, वृद्धि, पुष्पन एवं दाना भरने–में कीट एवं रोगों का प्रकोप देखने को मिलता है। फसल सुरक्षा के लिए नियमित निरीक्षण, समय पर पहचान, और समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना अत्यंत आवश्यक है। जैविक, सांस्कृतिक और रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग फसल को सुरक्षित रखने में सहायक होता है।

i- **कीट एवं उनका प्रबंधन**

रागी की फसल में विभिन्न प्रकार के कीट पत्तियों, तनों, जड़ों और दानों को नुकसान पहुंचाते हैं। ये कीट पौधों का रस चूसते हैं या पौधों के विभिन्न भागों को खाकर फसल की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

प्रमुख कीटः

1. तना छेदक: यह रागी का प्रमुख कीट है, जिसकी सुंडी तने के अंदर घुसकर उसे खोखला कर देती है।

लक्षणः

- पौधों का मुरझाना
- तनों का कमजोर होना
- दाना बनने में कमी

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई करें
- संक्रमित पौधों को निकालकर नष्ट करें
- ट्राइकोग्रामा जैसे जैविक परजीवी का उपयोग
- आवश्यकता अनुसार अनुषंसित कीटनाशकों का छिड़काव

2. शूट फ्लाई: यह कीट विशेष रूप से प्रारंभिक अवस्था में फसल को प्रभावित करता है।

लक्षणः

- अंकुरित पौधों का सूखना
- "Dead Heart" लक्षण

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई
- बीज उपचार
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन
- आवश्यकतानुसार कीटनाशक का प्रयोग

3. एफिडः ये छोटे कीट पत्तियों और कोमल भागों का रस चूसते हैं।

लक्षणः

- पत्तियों का पीला पड़ना
- चिपचिपा पदार्थ
- पौधों की वृद्धि रुकना

प्रबंधनः

- पीले चिपचिपे ट्रैप का उपयोग
- नीम तेल या साबुन घोल का छिड़काव
- आवश्यकता होने पर कीटनाशक का प्रयोग

4. आर्मी वर्मः यह कीट पत्तियों को तेजी से खाकर फसल को नुकसान पहुंचाता है।

लक्षणः

- पत्तियों का पूर्ण या आंशिक नष्ट होना
- खेत में समूह में कीटों का प्रकोप

प्रबंधनः

- प्रारंभिक अवस्था में हाथ से नष्ट करना
- प्रकाश प्रपंच (Light trap) का उपयोग
- जैविक नियंत्रण
- आवश्यकतानुसार रासायनिक नियंत्रण

ii- **रोग एवं उनका प्रबंधन**

रागी की फसल में प्रमुख रूप से फफूंदजनित रोग पाए जाते हैं, जो पत्तियों, तनों और दानों को प्रभावित करते हैं।

1. ब्लास्ट रोगः यह रागी का सबसे गंभीर रोग है।

लक्षणः

- पत्तियों पर धूसर या भूरे धब्बे
- तनों और बालियों पर संक्रमण
- दाना भरने में कमी

प्रबंधनः

- रोगरोधी किस्मों का चयन
- संतुलित नाइट्रोजन का उपयोग
- कार्बेन्डाजिम या ट्राइसाइक्लाजोल का छिड़काव

2. पत्ती धब्बा

लक्षणः

- पत्तियों पर भूरे या काले धब्बे
- पत्तियों का सूखना

प्रबंधनः

- रोग मुक्त बीज का उपयोग
- फसल चक्र अपनाना
- फफूंदनाशक का छिड़काव

3. रस्ट

लक्षणः

- पत्तियों पर लाल–भूरे धब्बे
- पत्तियों का समय से पहले सूखना

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई
- सल्फर आधारित फफूंदनाशकों का प्रयोग

4. डाउनी मिल्ड्यू

लक्षणः

- पत्तियों पर सफेद या धूसर परत
- पौधों की वृद्धि में कमी

प्रबंधनः

- उचित दूरी पर बुवाई
- जल निकासी की व्यवस्था
- मेटालेक्सिल आधारित फफूंदनाशक का प्रयोग

रागी की फसल में कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण न करने पर उपज और गुणवत्ता में भारी कमी आ सकती है। समेकित प्रबंधन तकनीकों को अपनाकर इन समस्याओं को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। जैविक, सांस्कृतिक और रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग न केवल फसल को सुरक्षित रखता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ कृषि प्रणाली को भी बढ़ावा देता है।

12. उपज

रागी (फिंगर मिलेट) की फसल की उपज कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे–उन्नत किस्मों का चयन, मृदा की उर्वरता, जलवायु परिस्थितियाँ, बुवाई का समय, सिंचाई प्रबंधन, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा फसल सुरक्षा उपाय। इन सभी कारकों का संतुलित और वैज्ञानिक प्रबंधन करने से रागी की उपज और गुणवत्ता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतः रागी की औसत उपज 1.5 से 2.5 टन प्रति हेक्टेयर के बीच होती है। वर्षा आधारित और सीमांत क्षेत्रों में यह उपज 1.2 से 1.8 टन प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है, जबकि सिंचित और उन्नत प्रबंधन वाली परिस्थितियों में यह बढ़कर 2.5 से 3.5 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

उपज को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकः

1. किस्मः उन्नत और रोगरोधी किस्में अधिक उत्पादन और स्थिरता प्रदान करती हैं।
2. जलवायुः 20–30°C तापमान और मध्यम वर्शा रागी के लिए अनुकूल होती है।
3. मृदा उर्वरताः जैविक पदार्थ और संतुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता से उपज बढ़ती है।
4. सिंचाई प्रबंधनः पुष्पन और दाना भरने की अवस्था में उचित सिंचाई से उत्पादन बढ़ता है।
5. खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रणः समय पर नियंत्रण करने से उपज हानि कम होती है।

किस्म के अनुसार संभावित उपजः

- GPU–28, GPU–67 – 2.5–3.5 टन/हेक्टेयर
- स्थानीय किस्में – 1.2–1.8 टन/हेक्टेयर

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

रागी (फिंगर मिलेट) एक अत्यंत पोषण–संपन्न और बहुउपयोगी अनाज है, जो आधुनिक समय में "सुपर फूड" के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। इसके प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से न केवल इसके उपयोग के नए आयाम विकसित हुए हैं, बल्कि किसानों और उद्यमियों के लिए आय के नए अवसर भी उत्पन्न हुए हैं। रागी को कच्चे अनाज के रूप में बेचने के बजाय विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों के रूप में प्रस्तुत करने से इसकी बाजार मांग और आर्थिक मूल्य दोनों बढ़ते हैं।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पादः

1. रागी का आटाः रागी के दानों को पीसकर तैयार किया जाता है। इसका उपयोग रोटी, पराठा, दलिया, पेज और बेकरी उत्पादों में किया जाता है।

2. रागी माल्टः अंकुरित रागी से तैयार किया जाता है। यह बच्चों और बुजुर्गों के लिए अत्यंत पौष्टिक पेय है।

3. रेडी–टू–ईट एवं रेडी–टू–कुक उत्पादः

- इंस्टेंट रागी दलिया
- रागी उपमा मिक्स
- खिचड़ी मिक्स

ये उत्पाद शहरी जीवनशैली के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं।

4. बिस्कुट एवं बेकरी उत्पादः रागी के आटे से कुकीज, बिस्कुट, ब्रेड, केक आदि बनाए जाते हैं। ये उत्पाद उच्च फाइबर और कैल्शियम युक्त होते हैं।

5. नूडल्स और पास्ताः रागी आधारित ग्लूटेन–फ्री नूडल्स और पास्ता स्वास्थ्यवर्धक विकल्प के रूप में लोकप्रिय हो रहे हैं।

6. एनर्जी बार और हेल्थ स्नैक्सः रागी को सूखे मेवे और अन्य अनाजों के साथ मिलाकर पौष्टिक स्नैक्स और एनर्जी बार तैयार किए जाते हैं।

7. मल्टीग्रेन उत्पादः रागी को ज्वार, बाजरा, ओट्स आदि के साथ मिलाकर मल्टीग्रेन आटा, ब्रेड और अन्य उत्पाद बनाए जाते हैं।

व्यावसायिक और विपणन पहलूः

- आकर्षक पैकेजिंग और ब्रांडिंग से उत्पाद की मांग बढ़ती है।
- जैविक और ग्लूटेन–फ्री प्रमाणन से बाजार मूल्य बढ़ता है।
- किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से सामूहिक प्रसंस्करण अधिक लाभकारी होता है।

रागी के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से इस पारंपरिक फसल को आधुनिक खाद्य उद्योग से जोड़ा जा सकता है। इससे न केवल इसकी उपयोगिता और मांग बढ़ती है, बल्कि किसानों को अधिक आय और स्थायी आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता है। रागी को पोषण सुरक्षा, स्वास्थ्य संवर्धन और टिकाऊ कृषि प्रणाली के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में विकसित किया जा सकता है।

अध्याय ६

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट)

1. परिचय

कांगनी, एक अत्यंत प्राचीन, पोषण–संपन्न और जलवायु–सहिष्णु लघु अनाज (मिलेट) है। ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कांगनी की खेती लगभग 6000 वर्ष पूर्व चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रारंभ हुई थी, जहाँ से यह धीरे–धीरे भारत, अफ्रीका और यूरोप के विभिन्न भागों में फैल गई। भारत में कांगनी को पारंपरिक रूप से सूखा प्रभावित, सीमांत और वर्षा–आधारित क्षेत्रों में उगाया जाता रहा है। वर्तमान समय में इसकी खेती उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल कम जल, कम उर्वरता और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उत्पादन देने की क्षमता रखती है, जिससे यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प बनती जा रही है।

कांगनी का पौधा मध्यम ऊँचाई का, पतले तनों वाला और संकरी पत्तियों वाला होता है। इसके पुष्पक्रम का आकार लोमड़ी की पूंछ जैसा होता है, जिसके कारण इसे "Foxtail Millet" कहा जाता है। यह फसल तेजी से बढ़ने वाली है और इसकी फसल अवधि सामान्यतः 70–100 दिनों की होती है, जिससे यह बहुफसली प्रणाली में भी आसानी से समाहित हो सकती है। पोषण की दृष्टि से कांगनी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन, जटिल कार्बोहाइड्रेट, आहार रेशा, विटामिन (विशेषकर B–समूह) और खनिज (आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम) प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण सीलिएक रोग, मधुमेह, मोटापा और हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। इसके नियमित सेवन से पाचन तंत्र मजबूत होता है, रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित रहता है और शरीर को दीर्घकालिक ऊर्जा प्राप्त होती है।

पारंपरिक रूप से कांगनी का उपयोग खिचड़ी, दलिया, रोटी, पेय पदार्थ और विभिन्न स्थानीय व्यंजनों में किया जाता रहा है। आधुनिक समय में इसके

प्रसंस्करण द्वारा बिस्कुट, फ्लेक्स, पास्ता, नूडल्स, रेडी–टू–ईट खाद्य पदार्थ और हेल्थ स्नैक्स तैयार किए जा रहे हैं, जिससे इसकी मांग तेजी से बढ़ रही है। कांगनी न केवल पोषण सुरक्षा प्रदान करती है, बल्कि यह जलवायु परिवर्तन के अनुकूल एक टिकाऊ कृषि प्रणाली का भी हिस्सा है। कम पानी की आवश्यकता, सूखा सहनशीलता, कम इनपुट लागत और उच्च पोषण मूल्य के कारण यह फसल भविष्य की खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा रही है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल (फैमिली)

कांगनी एक प्रमुख मिलेट फसल है, जिसकी वैज्ञानिक पहचान और वर्गीकरण कृषि अनुसंधान और फसल प्रबंधन के लिए अत्यंत आवष्यक है।

- वनस्पतिक नामः *Setaria italica*
- कुलः *Poaceae* (घास कुल)

कांगनी घास कुल की फसल है और इसके पौधे की संरचना अन्य अनाजों जैसे ज्वार और बाजरा से मिलती–जुलती है। इसका पुष्पक्रम घना और बेलनाकार होता है, जो इसे अन्य मिलेट्स से अलग पहचान देता है।

स्थानीय नामः

- हिंदीः कांगनी
- अंग्रेजीः "Foxtail Millet"
- तमिलः थिनई
- तेलुगुः कोर्रालु
- कन्नड़ः नवणे
- मराठीः कांग
- गुजरातीः कांग
- बंगालीः कांगनी

3. पोषण मूल्य

कांगनी एक अत्यंत पोषण–संपन्न अनाज है, जिसे आधुनिक पोषण विज्ञान में "सुपर फूड" के रूप में भी मान्यता प्राप्त है।

100 ग्राम कांगनी में पोषक तत्वः

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)	लाभ/महत्व
ऊर्जा	330–350 kcal	शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है
कार्बोहाइड्रेट	60–65 ग्राम	ऊर्जा का मुख्य स्रोत
प्रोटीन	10–12 ग्राम	मांसपेशियों और ऊतकों के लिए आवश्यक
वसा	3–4 ग्राम	ऊर्जा और हार्मोन संतुलन
आहार रेशा	6–8 ग्राम	पाचन सुधार, कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण
आयरन	2–3 मि.ग्रा.	एनीमिया से बचाव
कैल्शियम	30–35 मि.ग्रा.	हड्डियों और दांतों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण
मैग्नीशियम	80–100 मि.ग्रा.	तंत्रिका एवं मांसपेशी कार्य
पोटैशियम	250–300 मि.ग्रा.	रक्तचाप नियंत्रण
विटामिन B	1–2 मि.ग्रा.	ऊर्जा उत्पादन और मस्तिष्क स्वास्थ्य

4. वृद्धि हेतु जलवायु

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट) एक उष्णकटिबंधीय तथा अर्ध–शुष्क जलवायु की प्रमुख फसल है, जो विविध पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूलन की उत्कृष्ट क्षमता रखती है। इसकी सफल खेती के लिए तापमान, वर्षा, आर्द्रता तथा प्रकाश अवधि का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। कांगनी की फसल सामान्यतः 20°C से 30°C तापमान के बीच सर्वोत्तम वृद्धि करती है। बीज अंकुरण के लिए 25–30°C तापमान आदर्श माना जाता है, जबकि पौधों की प्रारंभिक वृद्धि 22–28°C पर अच्छी होती है। फूल आने और दाना भरने के समय 25–30°C तापमान उपयुक्त रहता है। अत्यधिक ठंड (10°C से कम) या अत्यधिक गर्मी (35°C से अधिक) फसल की वृद्धि, पुष्पन और दाना बनने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है।

कांगनी एक लघु दिन की फसल है, अर्थात इसका फूलना कम दिन की अवधि में अधिक प्रभावी होता है। लंबे दिन की अवधि में फूल आने में विलंब हो सकता है, जिससे फसल की अवधि बढ़ जाती है। इसलिए यह खरीफ मौसम में अधिक सफल होती है, जब दिन की अवधि अपेक्षाकृत कम होती है और तापमान अनुकूल रहता है। वर्षा की दृष्टि से कांगनी एक कम पानी की आवश्यकता वाली फसल है। यह लगभग 300–500 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यह सूखा सहनशील फसल है, इसलिए सीमांत, वर्षा–आधारित और शुष्क क्षेत्रों में भी इसकी खेती की जा सकती है। हालांकि, अत्यधिक वर्षा या

जलभराव की स्थिति में जड़ें प्रभावित होती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक सकती है और रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। आर्द्रता का भी फसल पर प्रभाव पड़ता है। मध्यम आर्द्रता (50–70%) कांगनी के लिए उपयुक्त मानी जाती है। अत्यधिक आर्द्रता में फफूंदजनित रोगों की संभावना बढ़ जाती है, जबकि अत्यधिक शुष्क वातावरण में अंकुरण और प्रारंभिक वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

5. मृदा

कांगनी की खेती के लिए मृदा का चयन और उचित प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह फसल विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, लेकिन अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी में सर्वोत्तम उत्पादन देती है। कांगनी के लिए बलुई दोमट से लेकर मध्यम दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है। यह फसल हल्की से मध्यम बनावट वाली मिट्टी में अच्छी तरह बढ़ती है, जहाँ जड़ों का विकास सुगमता से हो सके और वायु का संचार बना रहे। भारी चिकनी मिट्टीया जलभराव वाली भूमि में इसकी जड़ें ठीक से विकसित नहीं हो पातीं, जिससे फसल की वृद्धि और उपज प्रभावित होती है।

मिट्टी का pH 5.5 से 7.5 के बीच होना आदर्श माना जाता है। हल्की अम्लीय से तटस्थ मिट्टी कांगनी के लिए सर्वोत्तम होती है। अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। कांगनी सीमांत और कम उर्वरता वाली भूमि में भी उगाई जा सकती है, लेकिन अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त जैविक पदार्थ होना आवश्यक है। खेत की तैयारी के समय 5–10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद, कम्पोस्ट या वर्मी–कम्पोस्ट मिलाना फायदेमंद होता है। इससे मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार होता है।

मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए जैव उर्वरकों का उपयोग भी लाभकारी होता है। बीज उपचार या मिट्टी में Azotobacter तथा Phosphate Solubilizing Bacteria का प्रयोग करने से नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है। अच्छी जुताई और खेत की समुचित तैयारी भी आवश्यक है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से की जाती है, इसके बाद 1–2 बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बनाया जाता है। खेत को समतल करने से जल प्रबंधन और बुवाई में सुविधा होती है।

6. उन्नत किस्में

कांगनी की खेती में उन्नत किस्मों का चयन उत्पादन, गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्नत किस्में न केवल अधिक उपज

देती हैं, बल्कि ये कम अवधि में पकती हैं, पर्यावरणीय तनाव को सहन करती हैं और प्रसंस्करण के लिए बेहतर दाने प्रदान करती हैं। भारत में विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थानों और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा कांगनी की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो विभिन्न जलवायु और मृदा परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में:

1. **Sia–3085** – यह एक उच्च उपज देने वाली और शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसकी फसल अवधि लगभग 80–85 दिन होती है। यह सूखा सहनशील है और सीमांत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।
2. **Sí–3156** – यह किस्म रोग प्रतिरोधक है और विशेष रूप से पत्ती धब्बा एवं ब्लास्ट रोग के प्रति सहनशील मानी जाती है। इसकी उपज स्थिर और दाने की गुणवत्ता अच्छी होती है।
3. **Prasad** – मध्यम अवधि की किस्म, जो विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। यह संतुलित उत्पादन और अच्छी पोषण गुणवत्ता के लिए जानी जाती है।
4. **DHFt–109** – यह किस्म सूखा सहनशील है और वर्षा आधारित क्षेत्रों में बेहतर प्रदर्शन करती है। इसके दाने मध्यम आकार के और पौष्टिक होते हैं।
5. **HMT–100–1** – यह किस्म उच्च गुणवत्ता वाले दाने प्रदान करती है और प्रसंस्करण उद्योग के लिए उपयुक्त है।
6. **SiA–326** – यह किस्म उच्च उत्पादन क्षमता और बेहतर अनुकूलन क्षमता के लिए जानी जाती है। यह विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में स्थिर उपज देती है।
7. **SiA–3088** – यह एक उन्नत किस्म है, जो मध्यम अवधि में पकती है और इसकी दाने की गुणवत्ता अच्छी होती है।

किस्म का चयन क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी की उर्वरता, उपलब्ध संसाधनों और फसल प्रबंधन के आधार पर किया जाना चाहिए। सही किस्म का चयन कांगनी की खेती में सफलता की कुंजी है।

7. बुवाई का समय

कांगनी की फसल में सही समय पर बुवाई करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे अंकुरण, पौधों की वृद्धि, पुष्पन और दाना भरने की प्रक्रिया सीधे प्रभावित होती है। कांगनी मुख्यतः खरीफ मौसम की फसल है, इसलिए इसकी बुवाई मानसून की शुरुआत के साथ की जाती है। सामान्यतः जून से जुलाई का समय

बुवाई के लिए सर्वोत्तम माना जाता है। इस समय पर्याप्त नमी और उपयुक्त तापमान उपलब्ध रहता है, जिससे बीज अंकुरण और प्रारंभिक वृद्धि अच्छी होती है। कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, कांगनी की बुवाई रबी मौसम (अक्टूबर) में भी की जा सकती है। हालांकि, रबी फसल के लिए तापमान और नमी का विषेश ध्यान रखना आवश्यक होता है।

बीज दर सामान्यतः 8–10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होती है। बीज को 2–3 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना उपयुक्त होता है, ताकि अंकुरण समान रूप से हो सके। बहुत गहराई पर बुवाई करने से अंकुरण धीमा हो जाता है, जबकि बहुत सतही बुवाई से बीज सूख सकते हैं। कतारबद्ध बुवाई अपनाना अधिक लाभकारी होता है। कतार से कतार की दूरी 20–25 सेंटीमीटर और पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेंटीमीटर रखना उपयुक्त होता है। इससे पौधों को पर्याप्त प्रकाश, वायु और पोषक तत्व मिलते हैं तथा खरपतवार नियंत्रण में भी सुविधा होती है। बुवाई से पहले बीज का उपचार करना आवष्यक है, जिससे बीजजनित रोगों से बचाव होता है। इसके लिए फफूंदनाशक या जैविक उपचार का उपयोग किया जा सकता है। समय पर और उचित विधि से बुवाई करने से फसल की वृद्धि संतुलित होती है, पौधे मजबूत बनते हैं और अंततः उपज एवं दाने की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, देर से बुवाई करने पर पौधों का विकास प्रभावित होता है, फूल और दाना भरने की प्रक्रिया बाधित होती है, जिससे उपज में कमी आ सकती है।

8. सिंचाई

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट) एक सूखा सहनशील फसल है, जो कम पानी की उपलब्धता में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यही कारण है कि इसे वर्षा–आधारित और सीमांत क्षेत्रों में विशेष रूप से उगाया जाता है। हालांकि, उचित और समय पर सिंचाई प्रबंधन अपनाने से फसल की वृद्धि, दानों की संख्या तथा गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है। कांगनी की जड़ प्रणाली अपेक्षाकृत उथली होती है, जिसके कारण यह मिट्टी की सतही नमी पर अधिक निर्भर रहती है। इसलिए खेत में नमी का संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। यदि कांगनी की खेती वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जा रही है, तो सामान्यतः अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, बशर्ते वर्षा समय पर और पर्याप्त मात्रा में हो। लेकिन यदि वर्षा अनियमित या कम हो, तो 2–3 सिंचाइयों की व्यवस्था करनी चाहिए।

महत्वपूर्ण सिंचाई अवस्थाएँः

1. **अंकुरण अवस्था :** बुवाई के तुरंत बाद यदि मिट्टी में पर्याप्त नमी नहीं है, तो हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे बीज अंकुरण समान और तेज हो सके।

2. **वृद्धि अवस्था :** इस चरण में पौधों की जड़ें और पत्तियाँ विकसित होती हैं। इस समय नमी की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है।
3. **पुष्पन अवस्था :** यह सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। इस समय पानी की कमी से फूल झड़ सकते हैं, जिससे दानों की संख्या कम हो जाती है।
4. **दाना भरने की अवस्था :** इस समय सिंचाई करने से दानों का आकार, वजन और गुणवत्ता बेहतर होती है।

सिंचाई प्रबंधन के मुख्य बिंदुः

- कुल 2–3 सिंचाई पर्याप्त होती हैं (वर्षा पर निर्भर)।
- सिंचाई के बीच 15–20 दिनों का अंतर रखा जा सकता है।
- हल्की और सतही सिंचाई अधिक उपयुक्त होती है।
- जलभराव से बचना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इससे जड़ों में सड़न और रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

कांगनी की फसल के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह पौधों की वृद्धि, दानों के विकास और अंतिम उपज को सीधे प्रभावित करता है। यद्यपि कांगनी कम उर्वरता वाली मिट्टी में भी उगाई जा सकती है, लेकिन उचित उर्वरक प्रबंधन अपनाने से इसकी उत्पादकता और गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

मुख्य पोषक तत्व :

1. **नाइट्रोजन :** नाइट्रोजन पौधों की पत्तियों, तनों और समग्र वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक तत्व है। इसकी पर्याप्त मात्रा से पौधे हरे–भरे और मजबूत बनते हैं।

- 40–50 किग्रा/हेक्टेयर
- आधी मात्रा बुवाई के समय और शेष मात्रा 25–30 दिन बाद दी जाती है।

2. फॉस्फोरस : यह जड़ों के विकास, पुष्पन और दाना बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- 30–40 किग्रा/हेक्टेयर
- पूरी मात्रा बुवाई के समय दी जाती है।

3. पोटाश : यह पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता, जल संतुलन और दाना भरने में सहायक होता है।

- 20–30 किग्रा/हेक्टेयर

सूक्ष्म पोषक तत्व

कांगनी की फसल में जिंक, बोरॉन और आयरन जैसे सूक्ष्म तत्वों की भी आवश्यकता होती है। इनकी कमी से पौधों में पीलापन, कमजोर वृद्धि और कम दाना बनना जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

- जिंक सल्फेटः 20–25 किग्रा/हेक्टेयर (मृदा में)
- बोरॉनः आवश्यकता अनुसार छिड़काव

जैविक उर्वरक का उपयोगः

कांगनी की खेती में जैविक खाद का उपयोग अत्यंत लाभकारी होता है।

- गोबर की खाद कम्पोस्टः 5–10 टन/हेक्टेयर
- वर्मी–कम्पोस्टः 2–3 टन/हेक्टेयर

10. खरपतवार प्रबंधन

कांगनी की फसल में खरपतवार एक प्रमुख समस्या है, विशेषकर प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में। खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, जल, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे फसल की वृद्धि और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

खरपतवारों का प्रभावः

- पौधों की वृद्धि में कमी
- पोषक तत्वों की कमी
- उपज में 20–30ः तक गिरावट
- रोग और कीटों का आश्रय स्थल

प्रमुख खरपतवारः

- चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारः अमरन्थस, चेनोपोडियम
- घास वर्गीय खरपतवारः एचिनोक्लोआ, साइनोडॉन
- अन्यः सोलानम, पोर्टुलाका

खरपतवार नियंत्रण की विधियाँः

1. सांस्कृतिक विधियाँ :

- समय पर बुवाईः फसल जल्दी स्थापित होती है और खरपतवार कम बढ़ते हैं।
- कतारबद्ध बुवाईः पौधों के बीच उचित दूरी रखने से खरपतवार नियंत्रण आसान होता है।

- फसल चक्र : विभिन्न फसलों के क्रम से खरपतवार का चक्र टूटता है।

2. यांत्रिक विधियाँ :

- निराई–गुड़ाई :
- पहली निराईः 15–20 दिन बाद
- दूसरी निराईः 30–35 दिन बाद
- हाथ से या छोटे औजारों द्वारा खरपतवार हटाना प्रभावी होता है।

11. फसल सुरक्षा

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट) की फसल में कीट एवं रोगों का प्रभाव फसल की विभिन्न अवस्थाओं—अंकुरण, वृद्धि, पुष्पन और दाना भरने पर पड़ता है। यद्यपि यह फसल अपेक्षाकृत सहनशील मानी जाती है, फिर भी प्रतिकूल जलवायु, असंतुलित उर्वरक उपयोग और अनुचित प्रबंधन के कारण कीट एवं रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। फसल सुरक्षा के लिए नियमित निगरानी, समय पर पहचान और समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना अत्यंत आवश्यक है। जैविक, सांस्कृतिक और रासायनिक विधियों के संतुलित उपयोग से फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है और उच्च गुणवत्ता की उपज प्राप्त की जा सकती है।

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

कांगनी की फसल में विभिन्न प्रकार के कीट पत्तियों, तनों, जड़ों और दानों को नुकसान पहुंचाते हैं। ये कीट पौधों का रस चूसते हैं, पत्तियाँ खाते हैं या तनों को नुकसान पहुंचाकर फसल की वृद्धि और उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

प्रमुख कीटः

1. तना छेदक : यह कांगनी का एक प्रमुख कीट है, जिसकी सुंडी तने के अंदर प्रवेश कर उसे खोखला कर देती है।

लक्षणः

- पौधों का मुरझाना
- तनों का कमजोर होना
- दाना बनने में कमी

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई करें
- संक्रमित पौधों को निकालकर नष्ट करें

- ट्राइकोग्रामा जैसे जैविक एजेंट का उपयोग
- आवश्यकता अनुसार अनुशंसित कीटनाशकों का छिड़काव

2. पत्ती भक्षक कीट : यह कीट पत्तियों को खाकर पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता को कम कर देता है।

लक्षणः

- पत्तियों में छेद
- पत्तियों का कटा–फटा होना

प्रबंधनः

- खेत की नियमित निगरानी
- नीम आधारित कीटनाशक (Neem oil) का छिड़काव
- अधिक प्रकोप होने पर सुरक्षित रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग

3. एफिड : ये छोटे कीट पत्तियों और कोमल भागों का रस चूसते हैं।

लक्षणः

- पत्तियों का पीला पड़ना
- चिपचिपा पदार्थ
- पौधों की वृद्धि रुकना

प्रबंधनः

- पीले चिपचिपे ट्रैप का उपयोग
- नीम तेल या साबुन घोल का छिड़काव
- आवश्यकतानुसार कीटनाशक का प्रयोग

4. शूट फ्लाई : यह कीट प्रारंभिक अवस्था में पौधों को प्रभावित करता है।

लक्षणः

- अंकुरित पौधों का सूखना

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई
- बीज उपचार
- खेत की स्वच्छता बनाए रखना

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

कांगनी की फसल में विभिन्न फफूंदजनित, जीवाणुजनित और कभी–कभी विषाणुजनित रोग भी देखे जाते हैं, जो पत्तियों, तनों और दानों को प्रभावित करते हैं।

प्रमुख रोगः

1. ब्लास्ट : यह कांगनी का सबसे प्रमुख रोग है।

लक्षणः

- पत्तियों पर धूसर या भूरे धब्बे
- तनों और दानों पर संक्रमण
- दाना भरने में कमी

प्रबंधनः

- रोगरोधी किस्मों का चयन
- संतुलित नाइट्रोजन उपयोग
- कार्बेन्डाजिम या ट्राइसाइक्लाजोल जैसे फफूंदनाशकों का छिड़काव

2. रस्ट : यह फफूंदजनित रोग है, जो पत्तियों को प्रभावित करता है।

लक्षणः

- पत्तियों पर भूरेध्लाल रंग के धब्बे
- पत्तियों का सूखना

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई
- संक्रमित पौधों को हटाना
- सल्फर आधारित फफूंदनाशकों का छिड़काव

3. पत्ती धब्बा

लक्षणः

- पत्तियों पर गोल या अनियमित धब्बे
- पत्तियों का झड़ना

प्रबंधनः

- रोग मुक्त बीज का उपयोग

- फसल चक्र अपनाना
- फफूंदनाशक का छिड़काव

4. डाउनी मिल्ड्यू : यह रोग अधिक आर्द्रता में तेजी से फैलता है।

लक्षणः

- पत्तियों पर सफेद या धूसर परत
- पौधों का कमजोर होना

प्रबंधनः

- अच्छी जल निकासी
- उचित दूरी पर बुवाई
- मेटालेक्सिल आधारित फफूंदनाशक का प्रयोग

कांगनी की फसल में कीट एवं रोगों का प्रभाव सीधे उपज और गुणवत्ता पर पड़ता है। समय पर पहचान, नियमित निगरानी और समेकित प्रबंधन अपनाकर इन समस्याओं को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। फसल सुरक्षा के लिए जैविक, सांस्कृतिक और रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग ही दीर्घकालीन और टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए सबसे उपयुक्त रणनीति है। इससे न केवल उत्पादन बढ़ता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

12. उपज

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट) की फसल की उपज अनेक कारकों पर निर्भर करती है, जैसे–उन्नत किस्मों का चयन, मृदा की उर्वरता, जलवायु परिस्थितियाँ, बुवाई का समय, सिंचाई प्रबंधन, पोशक तत्वों की उपलब्धता तथा फसल सुरक्षा उपाय। इन सभी कारकों का समुचित प्रबंधन करने से कांगनी की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। सामान्य परिस्थितियों में कांगनी की औसत उपज लगभग 1.5 से 2.0 टन प्रति हेक्टेयर होती है। यदि उन्नत किस्मों का चयन किया जाए और वैज्ञानिक कृषि तकनीकों का पालन किया जाए, तो यह उपज बढ़कर 2.0 से 2.5 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। कुछ उन्नत कृषि प्रणालियों और अनुकूल परिस्थितियों में यह उपज इससे भी अधिक हो सकती है। कांगनी के दाने छोटे, गोल और हल्के पीले या सुनहरे रंग के होते हैं। उच्च गुणवत्ता वाले दानों का आकार समान, वजन अधिक और पोषण मूल्य उच्च होता है, जो बाजार में बेहतर मूल्य दिलाते हैं।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

कांगनी (फॉक्सटेल मिलेट) एक उच्च पोशण और ग्लूटेन–फ्री अनाज होने के कारण आधुनिक खाद्य उद्योग में तेजी से लोकप्रिय हो रही है। इसके प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से न केवल इसके उपयोग के विविध रूप विकसित हुए हैं, बल्कि किसानों की आय में भी वृद्धि हुई है। कांगनी को सीधे कच्चे अनाज के रूप में बेचने के बजाय विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों में बदलकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए प्राथमिक प्रसंस्करण और द्वितीयक प्रसंस्करण दोनों आवश्यक हैं।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पादः

1. **कांगनी का आटा :** कांगनी के दानों को पीसकर तैयार किया जाता है। इसका उपयोग रोटी, पराठा, केक, बिस्कुट और अन्य बेकरी उत्पादों में किया जाता है। यह आटा ग्लूटेन–फ्री और उच्च फाइबर युक्त होता है।
2. **कांगनी फ्लेक्स** : दानों को भिगोकर, भाप में पकाकर और सुखाकर फ्लेक्स बनाए जाते हैं। यह नाश्ते के लिए म्यूजली, कॉर्नफ्लेक्स के विकल्प और हेल्दी स्नैक के रूप में उपयोग होता है।
3. **रेडी–टू–ईट उत्पाद** : कांगनी से इंस्टेंट उपमा, खिचड़ी, दलिया और रेडी–टू–कुक मिक्स तैयार किए जाते हैं, जो शहरी उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रिय हैं।
4. **नूडल्स और पास्ताः** कांगनी के आटे से ग्लूटेन–फ्री नूडल्स और पास्ता बनाए जाते हैं, जो स्वास्थ्यवर्धक विकल्प के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं।
5. **बिस्कुट और बेकरी उत्पादः** कांगनी के आटे से कुकीज, बिस्कुट, ब्रेड और केक तैयार किए जाते हैं, जिनमें पोषण मूल्य अधिक होता है।
6. **एनर्जी बार और हेल्थ स्नैक्सः** कांगनी को अन्य सूखे मेवों और अनाजों के साथ मिलाकर एनर्जी बार और पौश्टिक स्नैक्स बनाए जाते हैं।
7. **मल्टीग्रेन उत्पादः** कांगनी को ज्वार, बाजरा, रागी आदि के साथ मिलाकर मल्टीग्रेन आटा, ब्रेड और स्नैक्स तैयार किए जाते हैं।

मूल्य संवर्धन के लाभः

- कच्चे दानों की तुलना में अधिक बाजार मूल्य प्राप्त होता है।
- उत्पाद की शेल्फ लाइफ और गुणवत्ता में सुधार होता है।
- स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों की बढ़ती मांग का लाभ मिलता है।

- किसानों और उद्यमियों के लिए रोजगार और आय के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

व्यावसायिक और विपणन पहलू:

- कांगनी उत्पादों की ब्रांडिंग और पैकेजिंग से बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ती है।
- जैविक (Organic) और ग्लूटेन–फ्री प्रमाणन से उत्पाद की मांग और कीमत दोनों बढ़ती हैं।
- किसान उत्पादक संगठन (FPO) के माध्यम से सामूहिक प्रसंस्करण और विपणन अधिक लाभकारी होता है।

कांगनी के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से इस पारंपरिक फसल को आधुनिक बाजार से जोड़ा जा सकता है। इससे न केवल इसकी मांग और उपयोगिता बढ़ती है, बल्कि किसानों को अधिक लाभ और स्थायी आय का स्रोत भी प्राप्त होता है। कांगनी को "स्मार्ट फूड" के रूप में विकसित कर इसे पोषण सुरक्षा, स्वास्थ्य संवर्धन और टिकाऊ कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया जा सकता है।

अध्याय ७

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट)

1. परिचय

सांवा एक महत्वपूर्ण लघु अनाज फसल है, जो अपनी अल्प अवधि, उच्च पोषण मूल्य तथा सूखा सहनशीलता के कारण विशेष रूप से जानी जाती है। यह फसल मुख्यतः शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाती है, जहाँ अन्य अनाज फसलों का उत्पादन कठिन होता है। यह फसल बहुत कम अवधि (लगभग 45–70 दिन) में तैयार हो जाती है, जिससे इसे फसल चक्र में आसानी से शामिल किया जा सकता है। इसकी यह विशेषता इसे आपातकालीन फसल के रूप में भी महत्वपूर्ण बनाती है, विशेषकर जब मुख्य फसलें असफल हो जाएँ। सांवा कम वर्षा एवं सीमित संसाधनों वाली परिस्थितियों में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखता है। इसकी जल एवं उर्वरक की आवश्यकता अन्य अनाज फसलों की तुलना में कम होती है, जिससे यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एक उपयुक्त विकल्प है। पोषण की दृष्टि से भी सांवा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), आयरन, कैल्शियम एवं अन्य खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। यह एक ग्लूटेन–फ्री अनाज है, जो स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। वर्तमान समय में मिलेट्स को "न्यूट्री–सिरियल्स" के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे सांवा का महत्व और अधिक बढ़ गया है। यह फसल न केवल पोषण सुरक्षा प्रदान करती है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के दौर में टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए भी एक आदर्श विकल्प है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल (फैमिली)

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक प्रमुख लघु अनाज फसल है, जो घास कुल से संबंधित है। यह फसल अपनी तीव्र वृद्धि, अल्प अवधि तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुकूलन क्षमता के लिए जानी जाती है।

- कुलः *Poaceae*
- वंशः *Echinochloa*
- प्रजातिः *Echinochloa frumentacea*

भारत में मुख्यतः *Echinochloa frumentacea* (भारतीय बार्नयार्ड मिलेट) की खेती की जाती है, जबकि *Echinochloa esculenta* (जापानी बार्नयार्ड मिलेट) भी कुछ क्षेत्रों में पाई जाती है।

स्थानीय नाम

सांवा विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से जाना जाता है, जैसे

- हिंदी – सांवा, सामा
- उत्तराखंड – झंगोरा
- मराठी – भगर
- गुजराती – सामो
- तमिल – कुदिरावली
- तेलुगु – उदलु
- कन्नड़ – ओदलु

विशेषताएँ

- यह एक वार्षिक घासीय फसल है।
- पौधे मध्यम ऊँचाई के, झाड़ीदार तथा तेजी से बढ़ने वाले होते हैं।
- इसकी जड़ें उथली होती हैं, जो कम नमी में भी कार्य कर सकती हैं।
- पुष्पक्रम (Inflorescence) पैनिकल (Panicle) प्रकार का होता है।
- बीज छोटे, गोल एवं हल्के रंग के होते हैं।

3. पोषण मूल्य

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक अत्यंत पौष्टिक लघु अनाज है, जिसे "न्यूट्री–सिरियल" के रूप में भी जाना जाता है। इसमें विभिन्न आवश्यक पाषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं। यह विशेष रूप से उच्च आहार रेशा (डाइटरी फाइबर) एवं खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है।

प्रमुख पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम अनाज में)

पोषक तत्व	मात्रा (लगभग)
ऊर्जा	300–320 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	60–65 ग्राम
प्रोटीन	6–8 ग्राम
वसा	2–3 ग्राम
आहार रेशा (फाइबर)	9–12 ग्राम
कैल्शियम	10–15 मि.ग्रा.
आयरन	4–6 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	250–280 मि.ग्रा.

पोषण संबंधी विशेषताएँ

- यह ग्लूटेन–फ्री अनाज है, जो ग्लूटेन असहिष्णुता (Celiac disease) से पीड़ित लोगों के लिए उपयुक्त है।
- इसमें उच्च मात्रा में डाइटरी फाइबर पाया जाता है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में सहायक होता है।
- कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स (Low Glycemic Inde) होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिए लाभकारी है।
- इसमें उपस्थित आयरन रक्त में हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाने में सहायक होता है।
- कैल्षियम एवं फॉस्फोरस हड्डियों एवं दांतों को मजबूत बनाते हैं।
- यह एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है, जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

स्वास्थ्य में महत्व

सांवा का नियमित सेवन कई स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है, जैसे–

- पाचन तंत्र को मजबूत बनाना
- हृदय रोगों के जोखिम को कम करना
- वजन नियंत्रण में सहायता
- मधुमेह नियंत्रण में सहायक
- शरीर को ऊर्जा एवं पोषण प्रदान करना

4. वृद्धि हेतु जलवायु

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक ऐसी फसल है, जो विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में आसानी से उगाई जा सकती है। यह विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने की क्षमता रखती है।

तापमान : सांवा की अच्छी वृद्धि के लिए 20°C से 30°C तापमान उपयुक्त माना जाता है। अंकुरण के समय मध्यम तापमान आवश्यक होता है, जबकि अत्यधिक ठंड या पाला फसल के लिए हानिकारक होता है।

वर्षा : इस फसल के लिए 40–60 सेमी वार्षिक वर्षा पर्याप्त होती है। यह फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, इसलिए इसे वर्षा आधारित कृषि के लिए उपयुक्त माना जाता है।

प्रकाश : सांवा एक प्रकाश प्रिय फसल है, जिसके लिए पर्याप्त धूप आवश्यक होती है। अच्छी सूर्य किरणों की उपलब्धता से पौधों की वृद्धि एवं दानों का विकास बेहतर होता है।

आर्द्रता : मध्यम आर्द्रता फसल के लिए लाभकारी होती है। अत्यधिक आर्द्रता की स्थिति में रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

विशेष अनुकूलन क्षमता

- यह फसल सूखा सहनशील होती है।
- कम अवधि (45–70 दिन) के कारण यह प्रतिकूल परिस्थितियों से जल्दी निकल जाती है।
- यह फसल कम उर्वरता वाली भूमि एवं सीमित संसाधनों में भी अच्छी तरह विकसित हो सकती है।

5. मृदा

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक ऐसी फसल है, जो विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाई जा सकती है। यह फसल विशेष रूप से कम उर्वरता वाली भूमि में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है, जिससे यह सीमांत एवं छोटे किसानों के लिए उपयुक्त विकल्प बनती है। सांवा के लिए बलुई दोमट (Sandy loam) एवं दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। ऐसी मृदाओं में जल निकास अच्छा होता है, जो फसल की वृद्धि के लिए आवश्यक है। इस फसल के लिए मृदा का pH 5.5 से 7. 5 के बीच उपयुक्त होता है। हल्की अम्लीय से लेकर तटस्थ मृदा में इसका विकास

अच्छा होता है। अच्छा जल निकास आवश्यक है, क्योंकि जलभराव की स्थिति में पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है तथा जड़ों में सड़न की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

6. उन्नत किस्में

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) की उन्नत किस्मों का चयन अधिक उपज, रोग–प्रतिरोधक क्षमता एवं विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूलता के आधार पर किया जाता है। भारत में विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थानों द्वारा कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो किसानों को बेहतर उत्पादन प्रदान करती हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में

किस्म का नाम	विशेषताएँ	अवधि (दिन)
VL 172	उच्च उपज, पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	60–65
VL 207	शीघ्र पकने वाली, रोग प्रतिरोधी	55–60
VL 29	मध्यम अवधि, अच्छी दाना गुणवत्ता	60–70
PRJ 1	सूखा सहनशील, अच्छी उपज	50–60
PRJ 2	कम अवधि, वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	45–55
DHBM 93&3	अधिक उपज देने वाली, अनुकूलन क्षमता अच्छी	60–70

किस्म चयन के लिए ध्यान देने योग्य बिंदु

- क्षेत्र की जलवायु एवं वर्षा की स्थिति के अनुसार किस्म का चयन करना चाहिए।
- कम अवधि वाली किस्में सूखा एवं वर्शा आधारित क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं।
- रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- उच्च उत्पादन के लिए प्रमाणित एवं शुद्ध बीज का उपयोग करना चाहिए।

उन्नत किस्मों के लाभ

- अधिक उपज प्राप्त होती है
- रोग एवं कीटों का कम प्रकोप
- प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छा प्रदर्शन
- बेहतर दाना गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य

7. बुवाई का समय

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक अल्प अवधि की फसल है, जिसकी बुवाई का समय मुख्यतः वर्षा (मानसून) की उपलब्धता पर निर्भर करता है। समय पर बुवाई करने से फसल की अच्छी वृद्धि एवं अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

खरीफ फसल सांवा की बुवाई सामान्यतः खरीफ मौसम में की जाती है। इसके लिए उपयुक्त समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई मध्य तक माना जाता है, जब मानसून की वर्शा प्रारंभ हो जाती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा आधारित क्षेत्रों में बुवाई का समय पहली अच्छी वर्षा के तुरंत बाद होना चाहिए, ताकि अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नमी उपलब्ध हो सके। सिंचित क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, वहाँ बुवाई को कुछ हद तक समायोजित किया जा सकता है, लेकिन सामान्यतः मानसून के साथ ही बुवाई करना अधिक लाभकारी होता है।

बुवाई से संबंधित सुझाव

- समय पर बुवाई करने से फसल की अवधि (45–70 दिन) का पूरा लाभ मिलता है।
- अच्छी वर्षा के साथ बुवाई करने पर अंकुरण बेहतर होता है।
- बुवाई से पहले खेत की उचित तैयारी एवं नमी का ध्यान रखना चाहिए।

8. सिंचाई

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक सूखा सहनशील फसल है, जिसे सामान्यतः अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यह फसल मुख्यतः वर्षा आधारित (Rainfed) परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाई जाती है।

सिंचाई की आवश्यकता

- सामान्यतः सांवा की फसल को 1–2 हल्की सिंचाइयों की आवश्यकता होती है, यदि वर्षा पर्याप्त न हो।
- अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अतिरिक्त सिंचाई की आवष्यकता नहीं होती।

महत्वपूर्ण अवस्थाएँ

फसल की निम्न अवस्थाओं पर नमी की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है–

1. अंकुरण अवस्था
2. टिलरिंग अवस्था
3. फूल आने एवं दाना भरने की अवस्था

इन अवस्थाओं पर नमी की कमी होने से उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक कम संसाधन वाली फसल है, जो कम उर्वरता वाली भूमि में भी उगाई जा सकती है। फिर भी संतुलित पोशक तत्व प्रबंधन अपनाने से फसल की वृद्धि एवं उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

पोषक तत्वों की आवश्यकता

सामान्यतः सांवा के लिए निम्न उर्वरकों की सिफारिश की जाती है

- नाइट्रोजन – 40–60
- फास्फोरस – 20–30
- पोटाश – 20–30

उर्वरकों का प्रयोग

- नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष आधी मात्रा टिलरिंग अवस्था में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दी जाती है।
- फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय मिट्टी में मिला दी जाती है।

जैविक खाद का उपयोग

- गोबर की सड़ी हुई खादया कम्पोस्ट 5–10 टन/हेक्टेयर की दर से बुवाई से पहले खेत में मिलाना लाभकारी होता है।
- इससे मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है।

सूक्ष्म पोषक तत्व

- जिंक की कमी होने पर जिंक सल्फेट का प्रयोग किया जा सकता है।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग फसल की गुणवत्ता को सुधारता है।

उर्वरक प्रबंधन के लाभ

- पौधों की बेहतर वृद्धि एवं विकास
- अधिक टिलरिंग एवं दानों की संख्या में वृद्धि
- उपज एवं गुणवत्ता में सुधार
- मृदा की उर्वरता में वृद्धि

10. खरपतवार प्रबंधन

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) की फसल में प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है, जिससे फसल के साथ पोषक तत्व, जल एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। यदि समय पर खरपतवार नियंत्रण न किया जाए, तो उपज में उल्लेखनीय कमी हो सकती है।

नियंत्रण के उपाय

1. सांस्कृतिक विधियाँ

- समय पर बुवाई एवं उचित दूरी बनाए रखना
- साफ एवं शुद्ध बीज का उपयोग
- खेत की अच्छी तैयारी

2. यांत्रिक विधियाँ

- बुवाई के 15–20 दिन बाद पहली निराई–गुड़ाई
- आवश्यकतानुसार 30–35 दिन पर दूसरी निराई–गुड़ाई
- खुरपी या हल्के कृषि यंत्रों का उपयोग

3. रासायनिक विधियाँ

- आवश्यकता होने पर प्री–इमर्जेंस खरपतवारनाशी जैसे पेंडीमेथालिन का उपयोग किया जा सकता है।
- खरपतवारनाशी का प्रयोग सावधानीपूर्वक एवं अनुशंसित मात्रा में करना चाहिए।

11. फसल सुरक्षा

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) की फसल सामान्यतः अन्य अनाज फसलों की तुलना में कीट एवं रोगों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील होती है, फिर भी अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों (अधिक आर्द्रता, तापमान में उतार–चढ़ाव, असंतुलित उर्वरक उपयोग आदि) में कुछ कीट एवं रोग फसल को गंभीर क्षति पहुँचा सकते हैं। अतः समेकित फसल सुरक्षा अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

1. प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

1. तना छेदक

लक्षणः

- कीट की सुंडी तने के अंदर प्रवेश कर जाती है।
- पौधे की बढ़वार रुक जाती है एवं "डेड हार्ट" बन जाता है।
- प्रभावित पौधे सूख जाते हैं।

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई एवं संतुलित उर्वरक का उपयोग करें।
- प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट करें।

- फेरोमोन ट्रैप का उपयोग कर कीट की निगरानी करें।
- अधिक प्रकोप होने पर अनुशंसित कीटनाशकों का छिड़काव करें।

2. टिड्डी / फुदका

लक्षणः

- पत्तियों को कुतरकर खा जाते हैं, जिससे पत्तियाँ छिद्रयुक्त हो जाती हैं।
- अधिक प्रकोप में पौधे पूरी तरह नष्ट हो सकते हैं।

प्रबंधनः

- खेत की नियमित निगरानी करें।
- प्रारंभिक अवस्था में हाथ से पकड़कर नष्ट करें (छोटे क्षेत्रों में)।
- प्रकाश प्रपंच (Light trap) का उपयोग करें।
- आवश्यकता अनुसार कीटनाशकों का प्रयोग करें।

3. माहू

लक्षणः

- पत्तियों एवं कोमल भागों से रस चूसते हैं।
- पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं एवं सिकुड़ जाती हैं।
- "हनीड्यू" स्राव के कारण काली फफूंदी विकसित हो सकती है।

प्रबंधनः

- नीम आधारित जैविक कीटनाशकों (नीम तेल) का छिड़काव करें।
- लेडीबर्ड बीटल जैसे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करें।
- अधिक प्रकोप होने पर अनुशंसित रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करें।

2. प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

1. पत्ती धब्बा रोग

लक्षणः

- पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे या काले धब्बे बनते हैं।
- धब्बे बढ़कर आपस में मिल जाते हैं, जिससे पत्तियाँ सूखने लगती हैं।

प्रबंधनः

- रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

- संक्रमित पौधों एवं अवशेषों को नष्ट करें।
- आवश्यकता अनुसार फफूंदनाशी (जैसे मैनकोजेब) का छिड़काव करें।

2. ब्लास्ट रोग

लक्षणः

- पत्तियों पर लम्बे, धूसर–भूरे धब्बे बनते हैं।
- बालियों पर संक्रमण होने से दाना भराव प्रभावित होता है।
- गंभीर स्थिति में पूरी फसल प्रभावित हो सकती है।

प्रबंधनः

- संतुलित नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग करें।
- समय पर बुवाई करें।
- संक्रमित पौधों को नष्ट करें।
- कार्बेन्डाजिम या ट्राइसीक्लाजोल जैसे फफूंदनाशी का छिड़काव करें।

3. जड़ सड़न

लक्षणः

- पौधे मुरझाने लगते हैं।
- जड़ें सड़ जाती हैं एवं पौधा आसानी से उखड़ जाता है।

प्रबंधनः

- खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था करें।
- बीजोपचार फफूंदनाशी से करें।
- फसल चक्र अपनाएँ।

समेकित फसल सुरक्षा के सामान्य उपाय

- प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज का उपयोग करें।
- बीजोपचार अवश्य करें।
- समय पर बुवाई एवं उचित दूरी बनाए रखें।
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ।
- खेत की नियमित निगरानी करें।
- जैविक, यांत्रिक एवं रासायनिक विधियों का संतुलित उपयोग करें।

- फसल अवशेषों का उचित निपटान करें।

12. उपज

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक अल्प अवधि की फसल होने के बावजूद उचित प्रबंधन अपनाने पर अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है। इसकी उपज कई कारकों जैसे–उन्नत किस्मों का चयन, समय पर बुवाई, पोषक तत्व प्रबंधन, सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण–पर निर्भर करती है।

- वर्षा आधारित– 8–12
- सिंचित– 12–18

उपज को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक

- **किस्मः** उन्नत एवं उच्च उत्पादक किस्मों से अधिक उपज प्राप्त होती है।
- **बुवाई का समयः** समय पर बुवाई करने से फसल की वृद्धि अच्छी होती है।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** संतुलित उर्वरक उपयोग से दाना भराव बेहतर होता है।
- **जल प्रबंधनः** आवश्यकतानुसार सिंचाई करने से उपज में वृद्धि होती है।
- **खरपतवार नियंत्रणः** प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है।
- **फसल सुरक्षाः** कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण उपज को सुरक्षित रखता है।

कटाई एवं मड़ाई

- जब फसल के दाने पूर्णतः पक जाएँ एवं पौधे सूखने लगें, तब कटाई करनी चाहिए।
- कटाई प्रायः हंसिया से की जाती है।
- कटाई के बाद मड़ाई करके दानों को अलग किया जाता है।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक अत्यंत उपयोगी एवं पौष्टिक लघु अनाज है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। वर्तमान समय में मिलेट्स के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण सांवा के मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं, जिससे किसानों एवं उद्यमियों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद

1. **सांवा चावल :** सांवा के दानों को साफ एवं प्रसंस्कृत करके "सांवा चावल" के रूप में उपयोग किया जाता है। यह व्रत (उपवास) के दौरान व्यापक रूप से खाया जाता है।

2. **खिचड़ी एवं पुलावः** सांवा से पौष्टिक खिचड़ी एवं पुलाव बनाए जाते हैं, जो पचने में हल्के एवं स्वादिष्ट होते हैं।
3. **खीर एवं मिठाइयाँः** सांवा का उपयोग खीर, लड्डू एवं अन्य पारंपरिक मिठाइयों के निर्माण में किया जाता है।
4. **आटा एवं रोटी/भाकरी**ः सांवा का आटा बनाकर रोटी, पराठा एवं भाकरी तैयार की जाती है। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।
5. **स्नैक्स** : इससे पॉप्ड मिलेट, नमकीन, चिप्स एवं अन्य हल्के खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं, जो पौश्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।
6. **बेकरी उत्पादः** सांवा का उपयोग बिस्कुट, केक एवं ब्रेड बनाने में किया जा सकता है, विशेषकर ग्लूटेन–फ्री उत्पादों में इसकी मांग अधिक है।
7. **रेडी–टू–ईट एवं रेडी–टू–कुक उत्पाद**ः आजकल सांवा से बने इंस्टेंट फूड्स जैसे उपमा मिक्स, खिचड़ी मिक्स आदि बाजार में उपलब्ध हैं, जो सुविधाजनक एवं समय की बचत करने वाले हैं।

मूल्य संवर्धन का महत्व

- किसानों की आय में वृद्धि
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर
- पोषण सुरक्षा को बढ़ावा
- मिलेट आधारित उद्योगों का विकास
- बाजार में उत्पादों की बढ़ती मांग

मूल्य संवर्धन हेतु सुझाव

- आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकों का उपयोग करें
- आकर्षक एवं सुरक्षित पैकेजिंग अपनाएँ
- ब्रांडिंग एवं विपणन (Marketing) पर ध्यान दें
- स्थानीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों की मांग को समझें

अध्याय ८

चेना / चिनी (प्रोसो मिलेट)

1. परिचय

चेना / चिनी (प्रोसो मिलेट) एक महत्वपूर्ण लघु अनाज (मिलेट) फसल है, जो अपने उच्च पोषण मूल्य, कम अवधि में पकने की क्षमता तथा सूखा सहनशीलता के कारण विशेष रूप से जानी जाती है। यह फसल मुख्यतः शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाती है, जहाँ अन्य अनाज फसलों का उत्पादन कठिन होता है। भारत में इसे विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है, जैसे चेना, चिनी आदि। यह फसल लगभग 60–90 दिनों में तैयार हो जाती है, जिससे इसे फसल चक्र में आसानी से शामिल किया जा सकता है और किसानों को त्वरित लाभ प्राप्त होता है। यह फसल कम वर्षा, हल्की एवं कम उर्वरता वाली मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी जल एवं पोशक तत्वों की आवश्यकता अन्य अनाज फसलों की तुलना में कम होती है, जिससे यह संसाधन सीमित क्षेत्रों के लिए एक आदर्श विकल्प बनती है।

पोषण की दृष्टि से प्रोसो मिलेट अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), आयरन तथा अन्य खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। यह ग्लूटेन–फ्री अनाज है, जो स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। वर्तमान समय में मिलेट्स को "न्यूट्री–सिरियल्स" के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे प्रोसो मिलेट का महत्व और अधिक बढ़ गया है। यह न केवल पोषण सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के दौर में टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए भी एक उपयुक्त फसल है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

चेना/चिनी (प्रोसो मिलेट) एक महत्वपूर्ण लघु अनाज फसल है, जिसकी पहचान उसके विशिष्ट वनस्पतिक गुणों एवं विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित स्थानीय नामों से होती है। प्रोसो मिलेट का वनस्पतिक नाम *Panicum miliaceum* है। यह पौधा घास वर्ग का होता है और तेजी से बढ़ने वाली वार्षिक फसल है। यह फसल

Poaceae (घास कुल) से संबंधित है, जिसमें अन्य प्रमुख अनाज फसलें जैसे गेहूं, धान एवं ज्वार भी शामिल हैं।

स्थानीय नाम

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रोसो मिलेट को अलग–अलग नामों से जाना जाता है–

- हिंदीः चेना, चिनी
- अंग्रेजीः *Proso Millet / Common Millet*
- संस्कृतः चेनक
- मराठीः चेना
- तेलुगुः वरिगुलु
- कन्नड़ः बारगु
- तमिलः पनिवारगु

3. पोषण मूल्य

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) पोषण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण अनाज है, जिसे "न्यूट्री–सिरियल" के रूप में भी जाना जाता है। इसमें शरीर के लिए आवश्यक अनेक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जो संतुलित आहार प्रदान करने में सहायक होते हैं। प्रोसो मिलेट में मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है, जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन भी अच्छी मात्रा में पाया जाता है, जो शरीर के ऊतकों के निर्माण एवं मरम्मत के लिए आवश्यक होता है। इसमें आहार रेशा (डाइटरी फाइबर) प्रचुर मात्रा में होता है, जो पाचन क्रिया को सुधारता है तथा कब्ज जैसी समस्याओं से राहत देता है। साथ ही यह वजन नियंत्रण एवं हृदय स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है।

प्रोसो मिलेट में कई महत्वपूर्ण खनिज तत्व भी पाए जाते हैं, जैसे

- **लोहा :** रक्त निर्माण में सहायक
- **कैल्शियम** : हड्डियों एवं दांतों के लिए आवश्यक
- **फॉस्फोरस** : ऊर्जा चक्र एवं कोशिकीय कार्यों में सहायक
- **मैग्नीषियम** : तंत्रिका एवं मांसपेशियों के कार्य में महत्वपूर्ण

इसके अलावा इसमें विटामिन B–समूह (विशेषकर नियासिन, थायमिन एवं राइबोफ्लेविन) पाए जाते हैं, जो शरीर की चयापचय क्रियाओं को सुचारु रूप से संचालित करते हैं। प्रोसो मिलेट की एक विशेषता यह है कि यह ग्लूटेन–फ्री होता

है, इसलिए यह उन लोगों के लिए उपयुक्त है जिन्हें ग्लूटेन से संबंधित समस्याएँ होती हैं, जैसे सीलिएक रोग।

औसत पोषण संरचना (प्रति 100 ग्राम)

- कार्बोहाइड्रेटः 65–70%
- प्रोटीनः 10–12%
- वसा (थ्रंज): 3–4%
- फाइबरः 7–8%
- ऊर्जाः लगभग 350–370 कैलोरी

4. वृद्धि हेतु जलवायु

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) एक अत्यंत अनुकूलनशील फसल है, जो विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में उगाई जा सकती है। यह विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है, जहाँ वर्षा सीमित होती है और तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इस फसल के लिए गर्म एवं शुष्क जलवायु सबसे अधिक उपयुक्त होती है। प्रोसो मिलेट की वृद्धि के लिए आदर्श तापमान लगभग 25°C से 35°C के बीच माना जाता है। अंकुरण के समय मध्यम तापमान की आवश्यकता होती है, जबकि वृद्धि एवं दाना बनने के समय पर्याप्त धूप और गर्म वातावरण फसल के लिए लाभकारी होता है। प्रोसो मिलेट कम वर्षा वाली फसल है और इसे सामान्यतः 40–60 सेमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह फसल सूखे की स्थिति को सहन करने में सक्षम होती है, इसलिए वर्षा आधारित कृषि प्रणाली में इसका विषेश महत्व है। हालांकि, अत्यधिक वर्शा एवं जलभराव की स्थिति इस फसल के लिए हानिकारक होती है। अधिक नमी के कारण जड़ों का विकास प्रभावित होता है और पौधों में रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। इसलिए अच्छी जल निकास व्यवस्था आवष्यक होती है। प्रोसो मिलेट के लिए खुला एवं धूप वाला वातावरण आवश्यक है। छायादार या अत्यधिक आर्द्र परिस्थितियाँ इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होतीं।

5. मष्दा

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) एक ऐसी फसल है जो विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, परंतु अच्छी उपज के लिए उपयुक्त मृदा का चयन अत्यंत आवश्यक होता है। यह फसल विशेष रूप से हल्की से मध्यम बनावट वाली, अच्छी जल निकास वाली मिट्टियों में बेहतर वृद्धि करती है। प्रोसो मिलेट के लिए बलुई दोमट से दोमट मष्दा सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी में

जल निकास अच्छा होता है तथा जड़ों का विकास सुचारु रूप से होता है। हालांकि, यह फसल कम उपजाऊ एवं हल्की मिट्टियों में भी उगाई जा सकती है, जो इसे सीमांत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाती है।

मृदा का pH मान 6.0 से 7.5 के बीच होना आदर्श माना जाता है। यह फसल हल्की क्षारीय मिट्टी को भी सहन कर सकती है, लेकिन अत्यधिक अम्लीय या अत्यधिक क्षारीय मृदा इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होती। इस फसल की एक विशेषता यह है कि यह कम उर्वरता वाली मिट्टियों में भी उत्पादन दे सकती है, परंतु बेहतर उपज के लिए मृदा में पर्याप्त जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता आवश्यक होती है। इसके लिए खेत की तैयारी के समय गोबर की खाद या कम्पोस्ट का उपयोग करना लाभकारी होता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रोसो मिलेट जलभराव को सहन नहीं कर पाती। इसलिए ऐसी भूमि का चयन करना चाहिए जहाँ अच्छी जल निकास व्यवस्था हो। अधिक नमी की स्थिति में जड़ों का सड़ना एवं रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है।

6. उन्नत किस्में

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत एवं क्षेत्रानुकूल किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। उन्नत किस्में अधिक उत्पादन देने वाली, रोग एवं कीट प्रतिरोधी तथा कम अवधि में पकने वाली होती हैं, जिससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

प्रोसो मिलेट की कुछ प्रमुख उन्नत किस्में निम्नलिखित हैं

प्रमुख उन्नत किस्में

1. **CO (PV) 5:** यह एक उच्च उपज देने वाली किस्म है, जो लगभग 70–80 दिनों में तैयार हो जाती है। यह किस्म दक्षिण भारत के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
2. **TNAU 145:** यह किस्म अच्छी उत्पादन क्षमता एवं समान दाना आकार के लिए जानी जाती है। इसकी फसल अवधि मध्यम होती है और यह विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में अनुकूल रहती है।
3. **GPUP 21:** यह किस्म शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा कम वर्षा में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है। इसमें सूखा सहनशीलता पाई जाती है।
4. **PRC 1:** यह किस्म जल्दी पकने वाली एवं बेहतर गुणवत्ता वाले दानों के लिए जानी जाती है। इसे सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।

5. **SiA 3085:** यह एक उन्नत किस्म है, जिसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है तथा यह बेहतर उत्पादन देती है।

किस्म चयन के मुख्य बिंदु

- क्षेत्र एवं जलवायु के अनुसार किस्म का चयन
- कम अवधि में तैयार होने वाली किस्मों को प्राथमिकता
- रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग
- उच्च उत्पादन क्षमता वाली किस्मों का चयन

7. बुवाई का समय

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की सफल खेती के लिए उचित समय पर बुवाई करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि समय पर बुवाई से अंकुरण अच्छा होता है, पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है तथा अधिक उपज प्राप्त होती है। यह एक अल्प अवधि (60–90 दिन) की फसल है, इसलिए इसे विभिन्न मौसमों में उगाया जा सकता है। खरीफ मौसम प्रोसो मिलेट की मुख्य बुवाई खरीफ मौसम में की जाती है। इसके लिए जून के अंत से जुलाई के मध्य तक का समय उपयुक्त होता है, जब मानसून की वर्षा प्रारंभ हो जाती है और मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में पहली या दूसरी अच्छी वर्षा के बाद बुवाई करना अधिक लाभकारी होता है। जायद मौसम कुछ क्षेत्रों में, जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है, प्रोसो मिलेट की बुवाई फरवरी से मार्च के बीच की जा सकती है। इस मौसम में फसल को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है।

8. सिंचाई

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) एक कम पानी में उगने वाली फसल है, जो विशेष रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है, इसलिए सामान्यतः इसे अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। खरीफ फसल में सिंचाई खरीफ मौसम में यह फसल मुख्यतः वर्षा पर निर्भर रहती है। यदि वर्षा पर्याप्त मात्रा में एवं समय पर होती है, तो अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन यदि वर्षा में लंबा अंतराल हो जाए, तो 1–2 हल्की सिंचाइयाँ देना लाभकारी होता है।

जायद फसल में सिंचाई जायद मौसम में, जहाँ वर्षा नहीं होती, वहाँ सिंचाई का विशेष महत्व होता है। इस स्थिति में फसल को 3–4 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ सकती है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन बेहतर होता है।

महत्वपूर्ण अवस्थाएँ

निम्न अवस्थाओं पर नमी की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है–

- अंकुरण अवस्था
- प्रारंभिक वृद्धि अवस्था
- पुष्पन (फूल आने) की अवस्था
- दाना भरने की अवस्था

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की फसल कम उर्वरता वाली मिट्टी में भी उगाई जा सकती है, फिर भी संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाने से इसकी उपज एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसलिए जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का समुचित एवं वैज्ञानिक उपयोग करना आवष्यक है।

जैविक उर्वरक

खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का उपयोग करना चाहिए। सामान्यतः 5–10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खाद अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना लाभकारी होता है। इससे मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ती है।

रासायनिक उर्वरक

प्रोसो मिलेट के लिए सामान्यतः निम्न उर्वरक मात्रा उपयुक्त मानी जाती है–

- **नाइट्रोजन** : 40–60 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- **फॉस्फोरस** : 20–30 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- **पोटाश** : 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर

इनमें से फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन की मात्रा 25–30 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना लाभकारी होता है।

सूक्ष्म पोषक तत्व

जहाँ मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी हो, वहाँ–

- **जिंक सल्फेट** : 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना लाभकारी होता है।

जैव उर्वरक

- एजोटोबैक्टर (नाइट्रोजन स्थिरीकरण)
- पीएसबी (Phosphate Solubilizing Bacteria)

10. खरपतवार प्रबंधन

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की फसल में खरपतवार एक प्रमुख समस्या होती है, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में। खरपतवार पौधों के साथ पोषक तत्वों, जल, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे फसल की वृद्धि प्रभावित होती है और उपज में कमी आती है। इसलिए समय पर एवं प्रभावी खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है।

महत्वपूर्ण अवधि

बुवाई के बाद प्रारंभिक 20–30 दिन खरपतवार नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। इस अवधि में खरपतवारों का नियंत्रण न करने पर वे तेजी से बढ़कर फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

यांत्रिक एवं सांस्कृतिक विधियाँ

- पहली निराई–गुड़ाईः बुवाई के 15–20 दिन बाद
- दूसरी निराई–गुड़ाईः 30–35 दिन बाद

इससे खरपतवार नश्ट होते हैं तथा मिट्टी भुरभुरी होकर जड़ों के विकास में सहायक होती है।

इसके अतिरिक्त

- समय पर बुवाई
- उचित कतार दूरी
- स्वच्छ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग

रासायनिक विधियाँ

खरपतवारों के अधिक प्रकोप की स्थिति में षाकनाषी का उपयोग किया जा सकता है–

- **प्री–इमर्जेन्स** : बुवाई के तुरंत बाद पेंडिमेथालिन 0.75–1.0 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जा सकता है।

यह खरपतवारों के अंकुरण को प्रारंभिक अवस्था में ही नियंत्रित कर देता है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन

सर्वोत्तम परिणाम के लिए यांत्रिक, सांस्कृतिक एवं रासायनिक विधियों का

संयुक्त रूप से उपयोग करना चाहिए। इससे खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है और फसल की उत्पादकता बढ़ती है।

सावधानियाँ

- शाकनाशी का प्रयोग अनुशंसित मात्रा में ही करें
- उचित समय एवं विधि का पालन करें
- फसल एवं पर्यावरण सुरक्षा का ध्यान रखें

11. फसल सुरक्षा

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की फसल पर विभिन्न प्रकार के कीट आक्रमण कर सकते हैं, जो फसल की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित करते हैं। प्रमुख कीट एवं उनके प्रबंधन निम्नलिखित हैं

प्रमुख कीट

1. शूट फ्लाई : यह कीट पौधों की प्रारंभिक अवस्था में नुकसान पहुँचाता है, जिससे "डेड हार्ट" (मध्य कली का सूखना) बन जाता है।

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई करना
- बीज उपचार
- प्रभावित पौधों को हटाना
- आवश्यकता अनुसार कीटनाशी छिड़काव

2. तना छेदक : इसके लार्वा तनों में छेद करके अंदर से नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं।

प्रबंधनः

- फसल अवशेषों का नष्ट करना
- फेरोमोन ट्रैप का उपयोग
- अनुशंसित कीटनाशियों का प्रयोग

3. एफिड : ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधनः

- नीम आधारित कीटनाशियों का प्रयोग

- डायमेथोएट जैसे कीटनाशियों का छिड़काव (आवश्यकता अनुसार)

समन्वित कीट प्रबंधन

- संतुलित उर्वरक उपयोग
- खेत की साफ–सफाई
- जैविक नियंत्रण (परभक्षी एवं परजीवी कीट)
- नियमित फसल निरीक्षण

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

प्रोसो मिलेट की फसल पर कुछ प्रमुख रोग भी देखे जाते हैं, जो उत्पादन एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

प्रमुख रोग

1. डाउनी मिल्ड्यू : इस रोग में पत्तियों पर पीले धब्बे बनते हैं तथा नीचे की सतह पर फफूंद विकसित होती है।

प्रबंधनः

- रोगमुक्त एवं प्रमाणित बीज का उपयोग
- बीज उपचार (मेटालाक्सिल आदि)
- संक्रमित पौधों को हटाना

2. पत्ती झुलसा : पत्तियों पर भूरे धब्बे बन जाते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है।

प्रबंधनः

- फसल चक्र अपनाना
- संतुलित उर्वरक उपयोग
- मैनकोजेब जैसे फफूंदनाशी का छिड़काव

3. दाना फफूंदी : यह रोग दानों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है और भंडारण में समस्या उत्पन्न करता है।

प्रबंधनः

- समय पर कटाई
- सूखे एवं साफ भंडारण की व्यवस्था
- प्रतिरोधी किस्मों का चयन

समन्वित रोग प्रबंधन

- बीज उपचार अनिवार्य रूप से करें
- फसल अवशेषों का नष्ट करना
- उचित जल निकास बनाए रखना
- नियमित निगरानी एवं समय पर नियंत्रण उपाय अपनाना

12. उपज

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) की उपज विभिन्न कारकों जैसे उन्नत किस्म, जलवायु, मृदा उर्वरता, सिंचाई, उर्वरक प्रबंधन तथा फसल सुरक्षा उपायों पर निर्भर करती है। यदि वैज्ञानिक एवं उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाया जाए, तो इस फसल से संतोषजनक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतः प्रोसो मिलेट की अनाज उपज लगभग 10–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। उन्नत किस्मों एवं बेहतर प्रबंधन तकनीकों के उपयोग से यह उपज 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। वहीं वर्षा आधारित एवं सीमित संसाधनों वाली परिस्थितियों में उपज अपेक्षाकृत कम हो सकती है। यह फसल चारा उत्पादन के लिए भी उपयोगी होती है। इसकी हरी चारा उपज लगभग 150–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है, जो पशुपालन के लिए लाभकारी होती है। प्रोसो मिलेट की एक विशेषता इसकी कम अवधि (60–90 दिन) में तैयार होने की क्षमता है, जिससे किसान एक वर्ष में एक से अधिक फसलें ले सकते हैं और कुल उत्पादन बढ़ा सकते हैं।

अधिक उपज प्राप्त करने के लिए मुख्य बिंदु

- उन्नत एवं प्रमाणित बीज का चयन
- समय पर बुवाई
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन
- उचित सिंचाई व्यवस्था
- खरपतवार, कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण

13. प्रसंस्कृत उत्पाद/मूल्य संवर्धन

चेना /चिनी (प्रोसो मिलेट) एक पोषक एवं बहुउपयोगी अनाज है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। वर्तमान समय में मिलेट्स को "सुपर फूड" के रूप में बढ़ावा मिलने के कारण प्रोसो मिलेट के मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद

1. आटा एवं पारंपरिक खाद्य पदार्थः प्रोसो मिलेट का आटा बनाकर रोटी, भाकरी, खिचड़ी आदि तैयार किए जाते हैं। यह पचने में हल्का एवं पौष्टिक होता है।

2. दलिया एवं पोरिज : इससे पौष्टिक दलिया बनाया जाता है, जो बच्चों, बुजुर्गों एवं स्वास्थ्य के प्रति सजग लोगों के लिए लाभकारी है।

3. स्नैक्स : प्रोसो मिलेट से पॉप्ड मिलेट, नमकीन, लड्डू एवं अन्य हल्के खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं, जो स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

4. बेकरी उत्पादः इसका उपयोग बिस्कुट, ब्रेड, केक आदि बनाने में किया जाता है। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण विशेष रूप से लोकप्रिय है।

5. रेडी–टू–ईट एवं रेडी–टू–कुक उत्पादः आजकल बाजार में प्रोसो मिलेट से बने इंस्टेंट फूड्स जैसे उपमा मिक्स, दलिया मिक्स आदि उपलब्ध हैं, जो समय की बचत करते हैं।

6. पेय पदार्थ : कुछ क्षेत्रों में प्रोसो मिलेट से पारंपरिक पेय पदार्थ एवं आधुनिक हेल्थ ड्रिंक्स भी बनाए जाते हैं।

7. पशु आहार इसके दाने एवं अवशेष पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

मूल्य संवर्धन का महत्व

- किसानों की आय में वृद्धि
- बाजार में उत्पादों की मांग बढ़ना
- रोजगार के अवसरों का सृजन
- पोषण सुरक्षा को बढ़ावा
- मिलेट आधारित उद्योगों का विकास

आज के समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण प्रोसो मिलेट से बने उत्पादों की मांग निरंतर बढ़ रही है। यदि उचित प्रसंस्करण, पैकेजिंग एवं विपणन तकनीकों को अपनाया जाए, तो यह फसल किसानों एवं उद्यमियों के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

अध्याय 9

कुटकी (लिटिल मिलेट)

1. परिचय

कुटकी (लिटिल मिलेट) भारत की प्रमुख लघु अनाज फसलों में से एक है, जिसे प्राचीन काल से ही मानव आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता रहा है। यह एक पोषक, स्वास्थ्यवर्धक तथा कम संसाधनों में उगाई जाने वाली फसल है। कुटकी की खेती मुख्य रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जाती है और यह कम उपजाऊ भूमि तथा प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसी कारण यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण फसल मानी जाती है। कुटकी एक अल्पावधि वाली फसल है, जो सामान्यतः 80–100 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी फसल में सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है तथा यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छी उपज देती है। कुटकी के पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा इसके दाने आकार में छोटे, गोलाकार एवं हल्के रंग के होते हैं। यह फसल मुख्य रूप से भारत के मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, झारखंड, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में उगाई जाती है।

पोषण की दृष्टि से कुटकी अत्यंत महत्वपूर्ण अनाज है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहार रेशा (फाइबर), विटामिन तथा विभिन्न खनिज तत्व जैसे आयरन, कैल्शियम और फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। कुटकी का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिए भी लाभदायक माना जाता है। इसके अलावा इसमें ग्लूटेन नहीं पाया जाता, इसलिए यह ग्लूटेन–फ्री आहार के रूप में भी उपयोगी है। पिछले कुछ वर्षों में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता तथा संतुलित आहार की आवश्यकता के कारण कुटकी और अन्य मिलेट्स का महत्व तेजी से बढ़ा है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2023 को "अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष" के रूप में मनाने से भी इन फसलों के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है। वर्तमान समय में कुटकी का उपयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों जैसे खिचड़ी, दलिया, रोटी, इडली, डोसा, उपमा तथा अन्य पारंपरिक एवं आधुनिक व्यंजनों के निर्माण में किया जा रहा है।

2. वानस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

कुटकी एक महत्वपूर्ण लघु अनाज फसल है, जो घास कुल की सदस्य है। यह पौधा आकार में छोटा तथा झाड़ीदार होता है और इसका जीवन चक्र अपेक्षाकृत कम अवधि का होता है। कुटकी के पौधे में पतली लंबी पत्तियाँ तथा शीर्ष पर गुच्छेदार पुष्पक्रम (पैनिकल) पाया जाता है, जिसमें छोटे–छोटे दाने विकसित होते हैं।

वानस्पतिक वर्गीकरण :

- वानस्पतिक नाम : *Panicum sumatrense*
- कुल : Poaceae (घास कुल)
- वंश : *Panicum*
- जाति : *sumatrense*

कुटकी का पौधा सामान्यतः 30 से 90 सेमी तक ऊँचा होता है। इसके तने पतले एवं बहु–शाखित होते हैं। इसकी पत्तियाँ संकरी एवं लंबी होती हैं। पौधे के शीर्ष पर बनने वाला पुष्पक्रम पैनिकल प्रकार का होता है, जिसमें छोटे–छोटे गोल दाने विकसित होते हैं।

स्थानीय नाम : भारत के विभिन्न राज्यों में कुटकी को अलग–अलग नामों से जाना जाता है, जैसे

- हिंदीः कुटकी
- अंग्रेजीः Little Millet
- संस्कृतः कंगु
- तमिलः सामई
- तेलुगुः सामालु
- कन्नड़ः सामे
- मलयालमः चामा
- मराठीः कुटकी/सावा

3. पोषण मूल्य

कुटकी (लिटिल मिलेट) एक अत्यंत पौष्टिक लघु अनाज है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अनेक आवश्यक पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। कुटकी के दाने आकार में छोटे होते हैं, परंतु

पोषण की दृष्टि से यह अन्य प्रमुख अनाजों के समान या उनसे अधिक लाभकारी माने जाते हैं। कुटकी में विशेष रूप से आहार रेशा (फाइबर) की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में सहायक होती है। इसके अलावा इसमें आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस और पोटेशियम जैसे खनिज तत्व भी पाए जाते हैं, जो शरीर के समुचित विकास और विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। कुटकी में वसा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे यह हल्का तथा सुपाच्य आहार माना जाता है। कुटकी का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, जिसके कारण यह रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने में सहायक होती है। इसलिए यह मधुमेह रोगियों के लिए भी उपयुक्त आहार माना जाता है। इसके अतिरिक्त कुटकी में ग्लूटेन नहीं पाया जाता, जिससे यह ग्लूटेन से संवेदनशील व्यक्तियों के लिए एक अच्छा विकल्प है।

प्रति 100 ग्राम कुटकी के दानों में औसतन निम्न पोषक तत्व पाए जाते हैंः

पोषक तत्व	मात्रा
ऊर्जा	लगभग 330–340 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	65–67 ग्राम
प्रोटीन	7–8 ग्राम
वसा	4–5 ग्राम
आहार रेशा (फाइबर)	7–9 ग्राम
कैल्शियम	लगभग 17 मिलीग्राम
आयरन	लगभग 9 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	लगभग 220 मिलीग्राम

इस प्रकार कुटकी एक संतुलित एवं पोषण से भरपूर अनाज है, जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के साथ–साथ स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए वर्तमान समय में संतुलित आहार और पोषण सुरक्षा के लिए कुटकी जैसे लघु अनाजों का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

4. वृद्धि हेतु जलवायु

कुटकी (लिटिल मिलेट) एक ऐसी फसल है जो उश्ण एवं अर्ध–शुष्क जलवायु में अच्छी तरह विकसित होती है। यह फसल प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है, इसलिए इसकी खेती मुख्य रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। कुटकी की फसल कम वर्षा, उच्च तापमान तथा सीमित संसाधनों वाली परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि कर सकती है। कुटकी की सफल खेती के लिए 20°C से 30°C तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसके अंकुरण और प्रारंभिक वृद्धि के लिए मध्यम तापमान तथा पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। अत्यधिक ठंड या पाला इस फसल के लिए हानिकारक हो सकता है।

यह फसल सामान्यतः 400 से 900 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगाई जा सकती है। हालांकि कुटकी में सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है, इसलिए कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी इसकी खेती संभव है। इसके विपरीत अत्यधिक वर्षा या जलभराव की स्थिति में पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। कुटकी एक कम अवधि वाली फसल है, जो सामान्यतः 80 से 100 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी खेती मुख्यतः खरीफ मौसम में की जाती है, जब मानसून के दौरान पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। इस प्रकार कुटकी की फसल उष्ण जलवायु, मध्यम वर्शा तथा सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। यही कारण है कि यह फसल भारत के कई राज्यों जैसे मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, कर्नाटक और तमिलनाडु में व्यापक रूप से उगाई जाती है।

5. मृदा

कुटकी (लिटिल मिलेट) की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, क्योंकि यह फसल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है। फिर भी अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अच्छी जल निकास वाली उपजाऊ मृदा उपयुक्त मानी जाती है। कुटकी की जड़ प्रणाली अपेक्षाकृत उथली होती है, इसलिए हल्की से मध्यम बनावट वाली मिट्टी में इसकी वृद्धि बेहतर होती है। कुटकी की सफल खेती के लिए दोमट तथा बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। इन मृदाओं में जल निकास अच्छा होता है तथा पौधों की जड़ों को पर्याप्त वायु और नमी प्राप्त होती है, जिससे पौधों की वृद्धि और विकास सुचारू रूप से होता है।

यह फसल अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है, इसलिए इसे सामान्यतः वर्षा आधारित तथा पहाड़ी क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जाता है। हालांकि अत्यधिक भारी, चिकनी तथा जलभराव वाली मृदाएं कुटकी की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं, क्योंकि जलभराव की स्थिति में पौधों की जड़ें प्रभावित होती हैं और फसल की वृद्धि बाधित हो जाती है। कुटकी की खेती के लिए मृदा का pH मान लगभग 5.5 से 7.5 के बीच उपयुक्त माना जाता है। इस सीमा में पौधों को आवश्यक पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे फसल की वृद्धि और उत्पादन बेहतर होता है।

6. उन्नत किस्में

कुटकी (लिटिल मिलेट) की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत एवं क्षेत्र के अनुकूल किस्मों का चयन करना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर ऐसी किस्मों का विकास किया गया है जो अधिक उत्पादन देने के साथ–साथ रोगों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील होती हैं।

उन्नत किस्मों के प्रयोग से फसल की उत्पादकता बढ़ती है तथा किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

भारत में कुटकी की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जिनका उपयोग विभिन्न राज्यों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इनमें प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैं

1. **टीएनएयू–1 (TNAU–1):** यह एक उन्नत किस्म है, जो अपेक्षाकृत कम अवधि में तैयार हो जाती है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा यह अच्छी उपज देने वाली किस्म मानी जाती है।
2. **सीओ–2 (CO–2):** यह किस्म तमिलनाडु क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। इसके पौधे मजबूत होते हैं तथा यह अच्छी गुणवत्ता के दाने उत्पन्न करती है।
3. **ओएलएम–203 (OLM–203):** यह किस्म उड़ीसा और मध्य भारत के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसकी विशेषता यह है कि यह सूखा सहन करने की क्षमता रखती है तथा स्थिर उत्पादन देती है।
4. **ओएलएम–217 (OLM–217):** यह किस्म अधिक उत्पादन देने वाली है तथा विभिन्न वर्षा आधारित क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।
5. **जेएलएम–8 (JLM–8):** यह एक उन्नत किस्म है जो अच्छी उपज देने के साथ–साथ प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बेहतर प्रदर्शन करती है।

क्र.सं.	किस्म	परिपक्वता अवधि (दिन)	उपयुक्त बुवाई समय
1	TNAU–1	85–90 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक
2	CO–2	90–95 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक
3	OLM–203	80–85 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक
4	OLM–217	85–90 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक
5	JLM–8	90–100 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक
6	JK–8	85–90 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक
7	BL–6	90–95 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक
8	RLM–37	85–90 दिन	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक

7. बुवाई का समय

कुटकी (लिटिल मिलेट) मुख्य रूप से खरीफ मौसम की फसल है और इसकी बुवाई वर्षा ऋतु की शुरुआत के साथ की जाती है। समय पर बुवाई करने से पौधों की अच्छी वृद्धि होती है तथा अधिक उपज प्राप्त होती है। सामान्यतः कुटकी की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक करना उपयुक्त माना जाता

है, जब मानसून की वर्षा प्रारंभ हो जाती है और मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। अधिकांश वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसान पहली या दूसरी अच्छी वर्षा के बाद कुटकी की बुवाई करते हैं। समय पर बुवाई करने से पौधों का अंकुरण अच्छा होता है तथा फसल की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है। यदि बुवाई बहुत देर से की जाती है, तो पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है और उपज में कमी आ सकती है। कुछ क्षेत्रों में, जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है, वहाँ कुटकी की बुवाई मई के अंत या जून के प्रारंभ में भी की जा सकती है। इससे फसल का विकास जल्दी होता है और समय पर कटाई संभव हो पाती है।

8. सिंचाई

कुटकी (लिटिल मिलेट) सामान्यतः वर्षा आधारित फसल है और इसकी खेती मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह फसल अपेक्षाकृत कम पानी में भी अच्छी तरह उग जाती है तथा इसमें सूखा सहन करने की क्षमता पाई जाती है। इसलिए अधिकांश परिस्थितियों में कुटकी की फसल को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यदि वर्षा पर्याप्त मात्रा में हो रही हो तो फसल का विकास सामान्य रूप से होता रहता है। किंतु यदि वर्षा की कमी हो या लंबे समय तक वर्षा न हो, तो फसल की अच्छी वृद्धि के लिए एक या दो हल्की सिंचाइयाँ करना लाभकारी होता है। विशेष रूप से फसल की अंकुरण अवस्था, पुष्पन (फूल आने) की अवस्था तथा दाना भरने की अवस्था में नमी की पर्याप्त उपलब्धता आवश्यक होती है।

जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, वहाँ कुटकी की फसल को आवश्यकता अनुसार 2–3 हल्की सिंचाइयाँ दी जा सकती हैं। इससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है तथा दानों का विकास अच्छी तरह होता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। ध्यान रखना चाहिए कि कुटकी की फसल जलभराव को सहन नहीं कर पाती, इसलिए खेत में पानी का ठहराव नहीं होना चाहिए। अच्छी जल निकास व्यवस्था होने से पौधों की जड़ें स्वस्थ रहती हैं और फसल की वृद्धि अच्छी होती है।

9. पोशक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

कुटकी (लिटिल मिलेट) की फसल सामान्यतः कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है, फिर भी अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक होता है। उचित उर्वरक प्रबंधन से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, दानों का विकास बेहतर होता है तथा फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है। सबसे पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः 5–10 टन गोबर की खाद प्रति

हेक्टेयर की दर से खेत में अंतिम जुताई के समय मिला देना चाहिए। इससे मृदा की उर्वरता तथा संरचना में सुधार होता है।

रासायनिक उर्वरकों के रूप में सामान्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश का संतुलित उपयोग करना चाहिए। कुटकी की फसल के लिए सामान्यतः निम्न उर्वरक मात्रा उपयुक्त मानी जाती है

- नाइट्रोजन : 40 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- फॉस्फोरस : 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- पोटाश : 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर

इन उर्वरकों में से फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय खेत में मिला देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फसल की 25–30 दिन की अवस्था पर टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो, तो जिंक सल्फेट का प्रयोग भी लाभकारी हो सकता है। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करने से बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं।

10. खरपतवार प्रबंधन

कुटकी (लिटिल मिलेट) की फसल में खरपतवार एक महत्वपूर्ण समस्या हो सकती है, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में। खरपतवार पौधों के साथ पोषक तत्वों, नमी, प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिसके कारण फसल की वृद्धि और विकास प्रभावित होता है तथा उपज में कमी आ सकती है। इसलिए समय पर और उचित खरपतवार नियंत्रण करना आवश्यक होता है। कुटकी की फसल में प्रारंभिक 20 से 40 दिनों की अवधि खरपतवार नियंत्रण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवधि में यदि खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया जाए, तो वे तेजी से बढ़कर फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए सामान्यतः दो बार निराई–गुड़ाई करना उपयुक्त होता है। पहली निराई बुवाई के लगभग 20–25 दिन बाद तथा दूसरी निराई 35–40 दिन बाद करनी चाहिए। इससे खेत में उगने वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं और पौधों को पर्याप्त पोशक तत्व तथा नमी मिलती है।

जहाँ श्रमिकों की कमी हो या खेत में खरपतवार अधिक मात्रा में हों, वहाँ रासायनिक विधि का भी उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए बुवाई के तुरंत बाद प्री–इमर्जेन्स शाकनाशी पेंडिमेथालिन का प्रयोग लगभग 0.75–1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से किया जा सकता है। इससे प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त

सांस्कृतिक विधियों जैसे समय पर बुवाई, उचित पौध दूरी तथा साफ बीज का उपयोग करने से भी खरपतवारों की समस्या को कम किया जा सकता है।

11. फसल सुरक्षा

कुटकी (लिटिल मिलेट) की फसल सामान्यतः अन्य अनाज फसलों की तुलना में कीट एवं रोगों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील मानी जाती है। फिर भी अनुकूल जलवायु परिस्थितियों, अत्यधिक आर्द्रता तथा असंतुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता के कारण कुछ कीट एवं रोग इस फसल को प्रभावित कर सकते हैं। इनकी समय पर पहचान तथा उचित प्रबंधन न करने पर पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उपज में कमी आ सकती है। इसलिए कुटकी की फसल में नियमित निरीक्षण करना तथा समन्वित प्रबंधन उपाय अपनाना आवष्यक है।

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

कुटकी की फसल में सामान्यतः कुछ प्रमुख कीट पाए जाते हैं, जो पौधों के विभिन्न भागों को नुकसान पहुँचाते हैं।

1. तना छेदक : यह कुटकी का एक महत्वपूर्ण कीट है। इस कीट की सूंडी पौधे के तने में छेद करके अंदर प्रवेश कर जाती है और अंदर के कोमल भाग को खाकर नुकसान पहुँचाती है। इसके प्रकोप से पौधे का षीर्श भाग सूख जाता है, जिसे "डेड हार्ट" कहा जाता है। अधिक प्रकोप होने पर पौधे कमजोर हो जाते हैं और दानों का विकास प्रभावित होता है।

प्रबंधनः

1. समय पर बुवाई करना चाहिए।
2. खेत को साफ रखना तथा फसल अवशेषों को नष्ट करना चाहिए।
3. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
4. प्रभावित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
5. अधिक प्रकोप होने पर क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी या क्विनालफॉस 25 ईसी का छिड़काव अनुशंसित मात्रा में किया जा सकता है।

2. शूट फ्लाई : यह कीट मुख्य रूप से फसल की प्रारंभिक अवस्था में नुकसान पहुँचाता है। मादा मक्खी पत्तियों पर अंडे देती है, जिनसे निकलने वाली सूंडी पौधे के अंदर प्रवेश कर पौधे के मध्य भाग को खाती है। इसके कारण पौधे का शीर्ष भाग सूख जाता है और पौधे की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधनः

1. समय पर बुवाई करना चाहिए।

2. स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए।
3. प्रभावित पौधों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
4. आवश्यकता होने पर उपयुक्त कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है।

3. पत्ती खाने वाले कीट : ये कीट पत्तियों को खाकर पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया को प्रभावित करते हैं। इनके अधिक प्रकोप से पौधों की वृद्धि धीमी हो जाती है और उत्पादन में कमी आती है।

प्रबंधनः

1. खेत की नियमित निगरानी करनी चाहिए।
2. प्रारंभिक अवस्था में कीटों को हाथ से एकत्र करके नष्ट किया जा सकता है।
3. अधिक प्रकोप होने पर उपयुक्त कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है।

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

कुटकी की फसल में कुछ फफूंद जनित रोग भी पाए जाते हैं, जो पौधों की वृद्धि तथा उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

1. ब्लास्ट रोग : यह कुटकी का एक प्रमुख फफूंद जनित रोग है। इस रोग के कारण पत्तियों पर भूरे या धूसर रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूखने लगती हैं और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

प्रबंधनः

1. रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए।
2. खेत में उचित दूरी पर बुवाई करनी चाहिए।
3. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
4. रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम या मैंकोजेब का छिड़काव अनुशंसित मात्रा में करना चाहिए।

2. रस्ट रोग : इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर जंग जैसे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

प्रबंधनः

1. रोगग्रस्त पौधों को खेत से हटाकर नष्ट करना चाहिए।
2. खेत में उचित दूरी पर बुवाई करनी चाहिए ताकि वायु संचार अच्छा रहे।
3. आवश्यकता होने पर उपयुक्त फफूंदनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

3. स्मट रोग : यह रोग फफूंद के कारण होता है। इस रोग में दानों के स्थान पर काले रंग का चूर्ण जैसा पदार्थ बन जाता है, जिससे दानों की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों प्रभावित होते हैं।

प्रबंधनः

1. रोगमुक्त एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करना।
2. बुवाई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम या थिरम से उपचारित करना।
3. रोगग्रस्त बालियों को नष्ट करना।

4. पत्ती धब्बा रोग : इस रोग में पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे या काले धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूखने लगती हैं और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

प्रबंधनः

1. खेत को साफ रखना तथा फसल अवशेषों को नष्ट करना।
2. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना।
3. आवश्यकता होने पर मैंकोजेब जैसे फफूंदनाशी का छिड़काव करना।

12. उपज

कुटकी (लिटिल मिलेट) की उपज मुख्य रूप से उगाई जाने वाली किस्म, मृदा की उर्वरता, जलवायु परिस्थितियों तथा अपनाई गई कृषि तकनीकों पर निर्भर करती है। यदि उन्नत किस्मों का चयन कर वैज्ञानिक पद्धति से खेती की जाए तथा संतुलित उर्वरक, उचित खरपतवार नियंत्रण और फसल सुरक्षा उपाय अपनाए जाएँ, तो कुटकी से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतः वर्षा आधारित परिस्थितियों में कुटकी की औसत उपज लगभग 8 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है। वहीं यदि फसल को उचित पोशण, समय पर बुवाई तथा आवश्यक सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, तो इसकी उपज 12 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक भी प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुटकी की फसल से पर्याप्त मात्रा में भूसा (फसल अवशेष) भी प्राप्त होता है, जिसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। सामान्यतः कुटकी की फसल से लगभग 15 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर भूसा प्राप्त होता है।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

कुटकी (लिटिल मिलेट) एक अत्यंत पौष्टिक तथा बहुउपयोगी लघु अनाज है। इसके दानों का उपयोग केवल पारंपरिक खाद्य पदार्थों तक सीमित नहीं है, बल्कि आधुनिक खाद्य उद्योग में भी इसका महत्व तेजी से बढ़ रहा है। कुटकी के

दानों का प्रसंस्करण करके विभिन्न प्रकार के पौष्टिक एवं स्वादिष्ट उत्पाद तैयार किए जाते हैं। कुटकी के प्रसंस्करण से इसके उपयोग की संभावनाएँ बढ़ती हैं तथा किसानों और उद्यमियों को अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है। कुटकी के दानों में एक कठोर बाहरी आवरण (छिलका) होता है, जिसे खाने योग्य बनाने के लिए सबसे पहले सफाई, ग्रेडिंग तथा मिलिंग की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया में दानों से छिलका अलग किया जाता है और साफ, चमकदार दाने प्राप्त होते हैं। इसके बाद इन दानों को सीधे भोजन के रूप में उपयोग किया जा सकता है या फिर विभिन्न खाद्य उत्पादों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

कुटकी से बनने वाले प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद निम्नलिखित हैं

1. कुटकी का आटाः कुटकी के दानों को पीसकर आटा तैयार किया जाता है। इस आटे का उपयोग रोटी, पराठा तथा अन्य पारंपरिक खाद्य पदार्थों को बनाने में किया जाता है। कुटकी का आटा पोषण से भरपूर होता है तथा इसमें आहार रेशा अधिक मात्रा में पाया जाता है।

2. कुटकी का दलियाः कुटकी के दानों को दरदरा पीसकर दलिया तैयार किया जाता है। यह एक हल्का, सुपाच्य तथा पौष्टिक भोजन है। कुटकी का दलिया नाश्ते के रूप में या बीमार एवं वृद्ध व्यक्तियों के लिए भी उपयुक्त माना जाता है।

3. खिचड़ीः कुटकी के दानों का उपयोग चावल के स्थान पर खिचड़ी बनाने के लिए किया जाता है। कुटकी की खिचड़ी स्वादिष्ट होने के साथ–साथ अत्यंत पौष्टिक होती है और आसानी से पच जाती है।

4. उपमाः कुटकी से स्वादिष्ट उपमा तैयार किया जाता है, जो दक्षिण भारत में एक लोकप्रिय नाश्ता है। यह ऊर्जा प्रदान करने वाला तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन है।

5. इडली एवं डोसाः कुटकी का उपयोग चावल के साथ मिलाकर या उसके स्थान पर इडली और डोसा बनाने में भी किया जाता है। इससे तैयार खाद्य पदार्थ हल्के, पौष्टिक तथा सुपाच्य होते हैं।

6. मिठाइयाँ एवं लड्डूः कुटकी के आटे से विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ जैसे लड्डू, हलवा आदि बनाए जाते हैं। ये उत्पाद पौष्टिक होने के साथ–साथ स्वादिष्ट भी होते हैं।

7. बिस्कुट एवं बेकरी उत्पादः वर्तमान समय में कुटकी के आटे का उपयोग बिस्कुट, कुकीज, केक तथा अन्य बेकरी उत्पाद बनाने में भी किया जा रहा है। इससे तैयार उत्पादों में पोषण मूल्य अधिक होता है तथा ये स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं।

8. रेडी–टू–कुक एवं रेडी–टू–ईट उत्पादः आधुनिक खाद्य उद्योग में कुटकी से विभिन्न प्रकार के पैकेज्ड खाद्य पदार्थ जैसे इंस्टेंट दलिया, रेडी–टू–कुक मिक्स, नाश्ता मिक्स आदि भी तैयार किए जा रहे हैं। इन उत्पादों की मांग शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही है।

इस प्रकार कुटकी का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन न केवल इसके पोषण लाभों को बढ़ावा देता है, बल्कि किसानों, लघु उद्योगों तथा खाद्य उद्यमियों के लिए आय के नए अवसर भी प्रदान करता है। वर्तमान समय में संतुलित आहार और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण कुटकी जैसे मिलेट्स से बने उत्पादों की मांग निरंतर बढ़ रही है, जिससे इनका आर्थिक एवं पोषण महत्व और भी अधिक बढ़ गया है।

अध्याय १०

कोदो (कोदो मिलेट)

1. परिचय

कोदो (कोदो मिलेट) एक महत्वपूर्ण लघु अनाज (मिलेट) फसल है, जो भारत की प्राचीन कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग रही है। यह फसल विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जाती है तथा कम वर्षा, कम उर्वरता वाली भूमि और प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है। इसी कारण इसे सीमांत एवं छोटे किसानों के लिए एक उपयुक्त और कम जोखिम वाली फसल माना जाता है। पारंपरिक रूप से कोदो की खेती मुख्य रूप से आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में की जाती रही है, जहाँ यह स्थानीय लोगों के दैनिक आहार का एक महत्वपूर्ण भाग है। कोदो मिलेट को मोटे अनाज अथवा श्री अन्न की श्रेणी में रखा जाता है। वर्तमान समय में स्वास्थ्य एवं पोषण के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण मिलेट फसलों का महत्व पुनः बढ़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2023 को "अंतर्राष्ट्रीय मिलेट वर्ष" घोषित किए जाने के बाद से मिलेट फसलों के उत्पादन और उपभोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। कोदो मिलेट भी इन्हीं महत्वपूर्ण मिलेट फसलों में से एक है, जो पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है।

कोदो मिलेट के दानों में उच्च मात्रा में आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्व तथा विटामिन पाए जाते हैं। इसमें विशेष रूप से आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस और एंटीऑक्सीडेंट तत्वों की अच्छी मात्रा होती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। इसका सेवन मधुमेह (डायबिटीज), मोटापा, हृदय रोग तथा पाचन संबंधी समस्याओं को नियंत्रित करने में सहायक माना जाता है। कोदो मिलेट में ग्लाइसेमिक इंडेक्स अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए एक उपयुक्त आहार माना जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें उपस्थित उच्च रेशा पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है। कोदो मिलेट की उत्पत्ति के विषय में माना जाता है कि इसका मूल स्थान भारत या दक्षिण–पूर्व एशिया का क्षेत्र है। प्राचीन काल से ही भारत में इसकी खेती की जाती रही है और

यह ग्रामीण क्षेत्रों में एक पारंपरिक खाद्यान्न के रूप में प्रचलित रहा है। ऐतिहासिक रूप से यह फसल वर्षा आधारित कृषि प्रणाली में उगाई जाती रही है, जहाँ अन्य प्रमुख अनाज फसलें अच्छी तरह से उत्पादन नहीं दे पातीं। इसलिए इसे जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में भी एक महत्वपूर्ण फसल माना जा रहा है। भारत में कोदो मिलेट की खेती मुख्यतः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, झारखंड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में की जाती है। मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्रों में यह फसल विशेष रूप से लोकप्रिय है। इन क्षेत्रों में किसान इसे पारंपरिक विधियों से उगाते हैं और इसका उपयोग घरेलू उपभोग के साथ–साथ स्थानीय बाजारों में विक्रय के लिए भी करते हैं।

कोदो मिलेट की खेती अपेक्षाकृत कम लागत में की जा सकती है, क्योंकि इसे अधिक उर्वरक, सिंचाई या विशेष प्रबंधन की आवश्यकता नहीं होती। यह फसल कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छी तरह से बढ़ती है और कीट एवं रोगों का प्रकोप भी अपेक्षाकृत कम होता है। यही कारण है कि यह फसल टिकाऊ कृषि (Sustainable Agriculture) के लिए एक उपयुक्त विकल्प मानी जाती है। इसके अतिरिक्त यह फसल मृदा संरक्षण तथा जैव विविधता को बनाए रखने में भी सहायक होती है। कोदो मिलेट के दानों का उपयोग विभिन्न प्रकार के पारंपरिक एवं आधुनिक खाद्य पदार्थों के निर्माण में किया जाता है। इससे दलिया, खिचड़ी, रोटी, उपमा, इडली, डोसा, खीर आदि अनेक व्यंजन बनाए जाते हैं। वर्तमान समय में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में भी कोदो मिलेट का उपयोग बढ़ रहा है। इससे मिलेट आधारित बिस्कुट, नूडल्स, पास्ता, रेडी–टू–ईट उत्पाद तथा स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थ तैयार किए जा रहे हैं, जिनकी बाजार में मांग लगातार बढ़ रही है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

कोदो मिलेट एक महत्वपूर्ण लघु अनाज फसल है, जो घास कुल से संबंधित है। यह एक वार्षिक घास प्रजाति है, जिसकी खेती मुख्यतः इसके पौष्टिक दानों के लिए की जाती है। कोदो का पौधा सामान्यतः मध्यम ऊँचाई का होता है और इसकी जड़ प्रणाली अच्छी तरह विकसित होती है, जिसके कारण यह फसल कम वर्षा तथा कम उर्वर भूमि में भी अच्छी तरह से बढ़ने में सक्षम होती है। कोदो मिलेट का वैज्ञानिक नाम *Paspalum scrobiculatum* है। यह प्रजाति उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है और विशेष रूप से भारत तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों में इसकी खेती की जाती है। इसकी अनुकूलन क्षमता अधिक होने के कारण यह विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में कोदो मिलेट को अलग–अलग स्थानीय नामों से जाना जाता है, जो वहाँ की भाषा एवं संस्कृति के अनुसार भिन्न होते हैं। हिंदी

में इसे सामान्यतः कोदो कहा जाता है, जबकि अंग्रेजी में इसे Kodo Millet के नाम से जाना जाता है। तमिल भाषा में इसे वरगु, कन्नड़ में हर्का, तेलुगु में अरिका तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में इसे अलग–अलग स्थानीय नामों से भी जाना जाता है।

वर्गीकरण की दृष्टि से कोदो मिलेट का स्थान निम्न प्रकार हैः

- वनस्पतिक नाम : *Paspalum scrobiculatum*
- कुल : Poaceae (घास कुल)
- वंश : *Paspalum*
- जाति : *scrobiculatum*

घास कुल की अन्य फसलों की तरह कोदो मिलेट का पौधा भी पतली एवं लंबी पत्तियों वाला होता है तथा इसके पुष्पक्रम में छोटे–छोटे दाने बनते हैं। पकने के बाद इसके दाने छोटे, गोल तथा हल्के भूरे या धूसर रंग के होते हैं।

3. पोषण मूल्य

कोदो मिलेट एक अत्यंत पौष्टिक लघु अनाज है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए कई महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का अच्छा स्रोत है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। अन्य सामान्य अनाजों की तुलना में कोदो मिलेट में आहार रेशा की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होती है। इसके नियमित सेवन से पाचन क्रिया में सुधार होता है तथा कब्ज जैसी समस्याओं से राहत मिलती है। कोदो मिलेट में कार्बोहाइड्रेट की पर्याप्त मात्रा होती है, जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करती है। इसके साथ ही इसमें प्रोटीन भी पाया जाता है, जो शरीर की वृद्धि एवं ऊतकों की मरम्मत के लिए आवश्यक होता है। यद्यपि इसमें प्रोटीन की मात्रा कुछ अन्य अनाजों की तुलना में थोड़ी कम होती है, फिर भी यह संतुलित आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकता है।

इसमें उपस्थित खनिज तत्व जैसे कैल्शियम, आयरन, फॉस्फोरस और पोटैशियम शरीर के विभिन्न जैविक कार्यों के लिए आवश्यक होते हैं। आयरन की उपस्थिति रक्त में हीमोग्लोबिन के निर्माण में सहायक होती है और एनीमिया जैसी समस्याओं को कम करने में मदद करती है। कैल्शियम हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जबकि फॉस्फोरस ऊर्जा चक्र और कोशिकीय कार्यों में सहायक होता है। कोदो मिलेट में विटामिन विशेष रूप से विटामिन बी–समूह जैसे नियासिन, राइबोफ्लेविन तथा थायमिन पाए जाते हैं, जो शरीर की चयापचय क्रियाओं को सुचारु रूप से संचालित करने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एंटीऑक्सीडेंट तत्व भी पाए जाते हैं, जो शरीर को हानिकारक मुक्त

कणों से बचाने में सहायक होते हैं और कई दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में मदद करते हैं। कोदो मिलेट का ग्लाइसेमिक इंडेक्स अपेक्षाकृत कम होता है, जिसके कारण यह मधुमेह (डायबिटीज) से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए एक उपयुक्त आहार माना जाता है। यह रक्त में शर्करा के स्तर को धीरे–धीरे बढ़ाता है, जिससे रक्त शर्करा का नियंत्रण बेहतर रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें उच्च मात्रा में फाइबर होने के कारण यह मोटापे को नियंत्रित करने तथा हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने में भी सहायक माना जाता है।

100 ग्राम कोदो मिलेट में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों का औसत विवरण

पोषक तत्व	मात्रा
ऊर्जा	लगभग 330–350 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	65–66 ग्राम
प्रोटीन	8–9 ग्राम
वसा	1.5–2 ग्राम
आहार रेशा (फाइबर)	8–10 ग्राम
कैल्शियम	लगभग 25–30 मिलीग्राम
आयरन	1.5–2 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	लगभग 180–190 मिलीग्राम

कोदो मिलेट न केवल ऊर्जा का अच्छा स्रोत है, बल्कि यह विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण एक स्वास्थ्यवर्धक एवं संतुलित आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। वर्तमान समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण कोदो मिलेट तथा अन्य मिलेट फसलों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है।

4. वृद्धि हेतु जलवायु

कोदो मिलेट एक उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है, जो मुख्य रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में अच्छी तरह उगाई जाती है। यह फसल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है और कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन दे सकती है। इसी कारण इसे वर्षा आधारित कृषि के लिए एक उपयुक्त फसल माना जाता है। कोदो मिलेट की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए गर्म और शुष्क जलवायु अनुकूल मानी जाती है। इसकी खेती के लिए लगभग 25°C से 35°C तापमान उपयुक्त रहता है। अंकुरण के समय मध्यम तापमान आवश्यक होता है, जबकि पौधे की वृद्धि एवं दाने बनने की अवस्था में अपेक्षाकृत अधिक तापमान लाभकारी होता है। अत्यधिक ठंड या पाला इस फसल के लिए हानिकारक होता है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। कोदो

मिलेट कम वर्षा की परिस्थितियों में भी अच्छी तरह उगाई जा सकती है। इसके लिए सामान्यतः 500 से 900 मि.मी. वार्षिक वर्षा पर्याप्त मानी जाती है। यह फसल वर्षा आधारित क्षेत्रों में खरीफ मौसम के दौरान बोई जाती है, जहाँ मानसून के दौरान प्राप्त वर्षा इसके विकास के लिए पर्याप्त होती है। हालांकि अत्यधिक वर्षा या जलभराव की स्थिति फसल के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि कोदो मिलेट जलभराव को सहन नहीं कर पाती। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में इसकी खेती से बचना चाहिए जहाँ पानी का निकास ठीक न हो।

कोदो मिलेट को पर्याप्त सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। अच्छी धूप पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं दानों का विकास बेहतर होता है। बादल छाए रहने या लंबे समय तक कम प्रकाश की स्थिति में पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। यह फसल सूखा सहन करने की अच्छी क्षमता रखती है, क्योंकि इसकी जड़ प्रणाली अपेक्षाकृत अच्छी तरह विकसित होती है, जो मिट्टी की गहराई से नमी को अवशोषित करने में सक्षम होती है। यही कारण है कि कोदो मिलेट को जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में एक जलवायु–सहिष्णु फसल के रूप में भी देखा जा रहा है।

5. मृदा

कोदो मिलेट एक ऐसी फसल है जो विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाई जा सकती है। यह फसल विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है जहाँ भूमि की उर्वरता कम होती है तथा अन्य प्रमुख खाद्यान्न फसलें अच्छी तरह से उत्पादन नहीं दे पातीं। कोदो की खेती सीमांत एवं कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है, इसलिए इसे गरीब किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण फसल माना जाता है। कोदो मिलेट की अच्छी वृद्धि के लिए दोमट, बलुई दोमट तथा हल्की काली मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। हालांकि यह फसल हल्की से मध्यम बनावट वाली मिट्टियों में बेहतर उत्पादन देती है। जिन मिट्टियों में जल निकास की अच्छी व्यवस्था होती है, वे इस फसल के लिए विशेष रूप से अनुकूल होती हैं। कोदो मिलेट जलभराव की स्थिति को सहन नहीं कर पाती, इसलिए भारी मिट्टी या ऐसी भूमि जहाँ पानी लंबे समय तक जमा रहता हो, वहाँ इसकी खेती उपयुक्त नहीं मानी जाती।

मृदा की उपयुक्त pH सीमा लगभग 5.5 से 7.5 के बीच मानी जाती है। हल्की अम्लीय से लेकर तटस्थ मृदा में इसकी वृद्धि अच्छी होती है। हालांकि यह फसल अपेक्षाकृत प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है, इसलिए थोड़ी क्षारीय या कम उर्वरता वाली भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। कोदो मिलेट की जड़ प्रणाली अपेक्षाकृत गहरी होती है, जिससे यह मिट्टी की गहराई में उपलब्ध नमी और पोषक तत्वों का उपयोग कर सकती है। यही कारण है कि यह

फसल वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह फसल मृदा अपरदन को कम करने में भी सहायक होती है, क्योंकि इसकी जड़ें मिट्टी को मजबूती प्रदान करती हैं। अच्छे उत्पादन के लिए खेत की मिट्टी भुरभुरी, अच्छी तरह तैयार तथा खरपतवार रहित होनी चाहिए। बुवाई से पहले खेत की एक या दो बार अच्छी जुताई करके पाटा लगाना लाभकारी होता है, जिससे मिट्टी में नमी का संरक्षण होता है तथा बीज अंकुरण के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है।

6. उन्नत किस्में

कोदो मिलेट की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत एवं क्षेत्र के अनुसार अनुशंसित किस्मों का चयन करना अत्यंत आवष्यक है। अनुसंधान संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा कोदो की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो अधिक उपज देने वाली, रोग एवं कीट प्रतिरोधी तथा विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं। इन किस्मों के उपयोग से किसानों को बेहतर उत्पादन तथा अच्छी गुणवत्ता के दाने प्राप्त होते हैं।

कोदो मिलेट की कुछ प्रमुख उन्नत किस्में निम्नलिखित हैंः

1. **जेके–41** : यह कोदो मिलेट की एक उन्नत एवं अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा यह किस्म लगभग 95–100 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने मध्यम आकार के होते हैं और यह किस्म मध्य भारत के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
2. **जेके–48** : यह किस्म अच्छी उपज देने वाली तथा सूखा सहन करने की क्षमता रखने वाली है। इसके पौधे मजबूत होते हैं और यह किस्म लगभग 100–105 दिनों में तैयार हो जाती है। यह वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
3. **जीपीयूके–3** : यह कोदो मिलेट की एक उन्नत किस्म है, जो अच्छी गुणवत्ता के दानों के लिए जानी जाती है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा यह किस्म विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में अच्छी तरह से उगाई जा सकती है।
4. **आरके–390** : यह किस्म उच्च उपज क्षमता वाली है तथा इसके दाने अच्छे आकार के होते हैं। यह किस्म विशेष रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों में अच्छी उपज देती है और किसानों के बीच लोकप्रिय है।
5. **केके–2** : यह किस्म अपेक्षाकृत जल्दी पकने वाली तथा अच्छी उपज देने वाली है। यह सूखा सहन करने की क्षमता रखती है तथा सीमांत भूमि के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

6. **टीएनएयूके–1 :** यह किस्म दक्षिण भारत के क्षेत्रों के लिए विकसित की गई है। इसके पौधे मध्यम कद के होते हैं तथा यह किस्म अच्छी गुणवत्ता के दानों के लिए जानी जाती है।

उन्नत किस्मों के चयन में स्थानीय जलवायु, मिट्टी की स्थिति तथा क्षेत्रीय कृषि वैज्ञानिकों की सिफारिशों को ध्यान में रखना चाहिए। उचित किस्मों का चयन करने से न केवल उपज में वृद्धि होती है, बल्कि फसल की गुणवत्ता भी बेहतर होती है।

7. बुवाई का समय

कोदो मिलेट मुख्यतः खरीफ मौसम की फसल है, जिसकी बुवाई वर्षा ऋतु के प्रारंभ में की जाती है। इस फसल की सफल खेती के लिए समय पर बुवाई करना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उचित समय पर बुवाई करने से बीजों का अच्छा अंकुरण होता है तथा पौधों की प्रारंभिक वृद्धि अच्छी होती है, जिससे अंततः अच्छी उपज प्राप्त होती है। सामान्यतः कोदो मिलेट की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक करना उपयुक्त माना जाता है। इस समय मानसून की वर्षा शुरू हो जाती है, जिससे मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध होती है और बीजों के अंकुरण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। वर्शा आधारित क्षेत्रों में किसान प्रायः पहली या दूसरी अच्छी वर्षा के बाद कोदो की बुवाई करते हैं, ताकि मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे।

कुछ क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है, वहाँ इसकी बुवाई जून के प्रारंभ में भी की जा सकती है। हालांकि बहुत देर से बुवाई करने से फसल की वृद्धि प्रभावित हो सकती है तथा उपज में कमी आ सकती है। इसलिए बुवाई को अत्यधिक देर तक टालना उचित नहीं होता। कोदो मिलेट की बुवाई सामान्यतः सीधी बुवाई (Direct seeding) द्वारा की जाती है। इसके लिए बीजों को कतारों में बोना अधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इससे पौधों के बीच उचित दूरी बनी रहती है और फसल प्रबंधन जैसे निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण में सुविधा होती है। सामान्यतः 25–30 सेमी कतार से कतार की दूरी तथा 8–10 सेमी पौधे से पौधे की दूरी उपयुक्त मानी जाती है।

बीज की बुवाई लगभग 3–4 सेमी गहराई पर करनी चाहिए, जिससे बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। बहुत अधिक गहराई पर बुवाई करने से अंकुरण में कमी आ सकती है। बुवाई के लिए सामान्यतः 8–10 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है, हालांकि यह बीज दर मिट्टी की स्थिति एवं बुवाई की विधि के अनुसार थोड़ी भिन्न हो सकती है।

8. सिंचाई

कोदो मिलेट मुख्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसल है और

इसकी जल आवश्यकता अन्य अनाज फसलों की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है। यह फसल सूखा सहन करने की अच्छी क्षमता रखती है, इसलिए सामान्यतः इसकी खेती उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ वर्षा सीमित होती है। अधिकांश क्षेत्रों में कोदो मिलेट की खेती मानसूनी वर्षा पर निर्भर करती है और सामान्य परिस्थितियों में अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। कोदो मिलेट की जड़ प्रणाली अच्छी तरह विकसित होती है, जिसके कारण यह मिट्टी की गहराई से नमी को अवशोषित कर सकती है। यही कारण है कि यह फसल कम पानी की उपलब्धता में भी अपनी वृद्धि बनाए रखती है। फिर भी यदि वर्षा पर्याप्त न हो या लंबे समय तक सूखे की स्थिति बनी रहे, तो फसल की अच्छी वृद्धि एवं उपज के लिए समय–समय पर हल्की सिंचाई करना लाभकारी होता है। कोदो मिलेट की फसल में कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जब नमी की आवश्यकता अधिक होती है। इन अवस्थाओं में नमी की कमी होने पर पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। सामान्यतः अंकुरण अवस्था, टिलरिंग (शाखा बनने की अवस्था) तथा पुष्पन एवं दाना बनने की अवस्था में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। यदि इन अवस्थाओं के दौरान वर्षा नहीं होती है, तो हल्की सिंचाई करने से फसल की वृद्धि बेहतर होती है।

सिंचाई करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि खेत में जलभराव की स्थिति न बनने पाए, क्योंकि कोदो मिलेट जलभराव को सहन नहीं कर पाती। अधिक पानी के कारण पौधों की जड़ें प्रभावित हो सकती हैं तथा पौधों की वृद्धि रुक सकती है। इसलिए खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था होना आवष्यक है।

जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है, वहाँ सामान्यतः 1–2 हल्की सिंचाइयाँ पर्याप्त होती हैं। पहली सिंचाई अंकुरण के बाद पौधों की प्रारंभिक वृद्धि के समय तथा दूसरी सिंचाई फूल आने या दाना बनने की अवस्था में की जा सकती है। हल्की सिंचाई से पौधों की वृद्धि में सुधार होता है तथा दानों का विकास बेहतर होता है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

कोदो मिलेट सामान्यतः कम उर्वरता वाली भूमि में भी उगाई जा सकती है, फिर भी संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाने से फसल की वृद्धि, विकास तथा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर उचित उर्वरक प्रबंधन करना आवष्यक होता है। इसके लिए बुवाई से पहले मृदा परीक्षण कराकर आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा का निर्धारण करना लाभकारी होता है। कोदो मिलेट की अच्छी वृद्धि के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाष जैसे प्रमुख पोषक तत्वों की आवष्यकता होती है। नाइट्रोजन पौधों की शाकीय वृद्धि तथा हरे भागों के विकास में सहायक होता है, जबकि फॉस्फोरस जड़ प्रणाली के विकास तथा पुष्पन एवं दाना बनने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पोटाश पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने तथा पौधों को प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति सहनशील बनाने में सहायक होता है।

सामान्यतः कोदो मिलेट की फसल के लिए 40–50 किलोग्राम नाइट्रोजन, 20–25 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की सिफारिश की जाती है। इनमें से पूरी मात्रा फॉस्फोरस और पोटाश की तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय खेत में डालनी चाहिए। शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा बुवाई के लगभग 25–30 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना लाभकारी होता है। रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का उपयोग भी मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। बुवाई से पहले खेत की तैयारी के समय लगभग 5–10 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाना लाभकारी होता है। इससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है तथा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व धीरे–धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त जैव उर्वरकों जैसे अजोटोबैक्टर या फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु का उपयोग करने से भी मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है और फसल की वृद्धि में सुधार होता है। बीज उपचार के रूप में इन जैव उर्वरकों का उपयोग करने से पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है। उर्वरकों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें उचित मात्रा और सही समय पर दिया जाए। अत्यधिक उर्वरकों का प्रयोग न केवल आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होता है, बल्कि इससे मृदा की गुणवत्ता भी प्रभावित हो सकती है। इसलिए संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाकर कोदो मिलेट की खेती में बेहतर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

10. खरपतवार प्रबंधन

कोदो मिलेट की खेती में खरपतवार एक प्रमुख समस्या है, विशेष रूप से फसल की प्रारंभिक अवस्था में। खरपतवार फसल के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उपज में कमी आ सकती है। यदि समय पर खरपतवार नियंत्रण न किया जाए, तो फसल उत्पादन में 25–40 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। इसलिए कोदो मिलेट की सफल खेती के लिए प्रभावी खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। कोदो मिलेट की फसल में सामान्यतः पाए जाने वाले प्रमुख खरपतवारों में सावां, मोथा, दूब घास, चौलाई तथा भंगरा आदि शामिल हैं। ये खरपतवार विशेष रूप से बुवाई के बाद प्रारंभिक 30–40 दिनों के दौरान अधिक तेजी से बढ़ते हैं और फसल की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण के लिए सांस्कृतिक, यांत्रिक तथा रासायनिक विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

सांस्कृतिक विधियाँः खेत की अच्छी तैयारी, समय पर बुवाई तथा उचित पौध दूरी बनाए रखने से खरपतवारों की वृद्धि को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वच्छ एवं खरपतवार रहित बीज का उपयोग करना भी आवश्यक है।

यांत्रिक विधियाँः कोदो मिलेट की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए सामान्यतः 1–2 बार निराई–गुड़ाई करना लाभकारी होता है। पहली निराई बुवाई के लगभग 20–25 दिन बाद तथा दूसरी निराई 35–40 दिन बाद करनी चाहिए। इससे खेत में खरपतवारों की संख्या कम हो जाती है और फसल को पोषक तत्वों तथा नमी का पर्याप्त लाभ मिलता है। कतारों में बुवाई की स्थिति में खुरपी या हाथ से निराई–गुड़ाई करना आसान होता है।

रासायनिक विधियाँः जहाँ श्रम की कमी हो या खरपतवार अधिक मात्रा में हों, वहाँ रासायनिक खरपतवारनाशियों का उपयोग भी किया जा सकता है। सामान्यतः प्री–इमरजेंस (बुवाई के तुरंत बाद) खरपतवारनाशी जैसे पेंडीमेथालिन का प्रयोग प्रभावी माना जाता है। इसे बुवाई के बाद और अंकुरण से पहले लगभग 0. 75–1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि फसल की प्रारंभिक 30–40 दिनों की अवधि खरपतवार प्रतिस्पर्धा के लिए सबसे संवेदनशील होती है। यदि इस अवधि के दौरान खेत को खरपतवार मुक्त रखा जाए, तो फसल की वृद्धि अच्छी होती है और उपज में वृद्धि होती है।

11. फसल सुरक्षा

कोदो मिलेट सामान्यतः एक सहनशील फसल मानी जाती है तथा इसमें कीट एवं रोगों का प्रकोप अन्य प्रमुख अनाज फसलों की तुलना में अपेक्षाकृत कम होता है। फिर भी अनुकूल परिस्थितियों में कुछ कीट एवं रोग फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं, जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। इसलिए समय पर पहचान और उचित प्रबंधन अपनाना आवश्यक होता है।

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

कोदो मिलेट की फसल में कुछ प्रमुख कीट समय–समय पर नुकसान पहुँचा सकते हैं। इनमें प्रमुख रूप से तना छेदक, पत्ती खाने वाले कीट तथा टिड्डी आदि शामिल हैं।

1. तना छेदक : इस कीट के लार्वा पौधे के तने में प्रवेश करके अंदर से उसे नुकसान पहुँचाते हैं। इसके कारण पौधे की वृद्धि रुक जाती है और कभी–कभी पौधे सूख जाते हैं। प्रभावित पौधों में "डेड हार्ट" जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

प्रबंधनः

1. खेत में स्वच्छता बनाए रखें तथा संक्रमित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।
2. संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ, विशेष रूप से नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग न करें।
3. अधिक प्रकोप होने पर उपयुक्त कीटनाशक का छिड़काव किया जा सकता है।

2. पत्ती खाने वाले कीट : ये कीट पत्तियों को खाकर पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता को कम कर देते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियाँ छिद्रित या कटी–फटी दिखाई देती हैं।

प्रबंधनः

1. खेत की नियमित निगरानी करें।
2. कीटों की संख्या अधिक होने पर अनुशंसित कीटनाशकों का प्रयोग करें।

3. टिड्डी : टिड्डियाँ पत्तियों को खाकर पौधों को नुकसान पहुँचाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधों की पत्तियाँ काफी हद तक नष्ट हो सकती हैं।

प्रबंधनः

1. खेत की नियमित निगरानी करें।
2. आवश्यकतानुसार उपयुक्त कीटनाशकों का छिड़काव करें।

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

कोदो मिलेट में कुछ फफूंद जनित रोग भी पाए जाते हैं, जो फसल की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं।

1. पत्ती धब्बा रोग : यह रोग मुख्यतः फफूंद के कारण होता है। पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे या गहरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो धीरे–धीरे बढ़कर बड़े हो जाते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियाँ सूख सकती हैं।

प्रबंधनः

1. रोगमुक्त बीज का उपयोग करें।
2. फसल अवशेषों को नष्ट करें।
3. आवश्यकता पड़ने पर उपयुक्त फफूंदनाशक का छिड़काव करें।

2. स्मट रोग : यह रोग भी फफूंद के कारण होता है और दानों को प्रभावित करता है। इस रोग के कारण दानों के स्थान पर काले रंग का चूर्णीय पदार्थ दिखाई देता है। इससे दानों की गुणवत्ता एवं उत्पादन प्रभावित होता है।

प्रबंधनः

1. बुवाई से पहले बीज का फफूंदनाशक से उपचार करें।
2. संक्रमित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट करें।

3. ब्लास्ट रोग : इस रोग में पत्तियों पर धूसर या भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में फैलकर बड़े हो जाते हैं। गंभीर स्थिति में पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

प्रबंधनः

1. संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ।
2. रोग के लक्षण दिखाई देने पर अनुशंसित फफूंदनाशकों का छिड़काव करें।

12. उपज

कोदो मिलेट की उपज कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे कि उन्नत किस्मों का चयन, मृदा की उर्वरता, जलवायु परिस्थितियाँ, समय पर बुवाई, उर्वरक प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण तथा फसल सुरक्षा उपाय। यदि फसल की खेती वैज्ञानिक विधियों के अनुसार की जाए, तो अच्छी गुणवत्ता के दानों के साथ संतोषजनक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतः पारंपरिक खेती की स्थिति में कोदो मिलेट की औसत उपज लगभग 8–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है। हालांकि उन्नत किस्मों का उपयोग, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, समय पर खरपतवार नियंत्रण तथा उचित फसल सुरक्षा उपाय अपनाने पर इसकी उपज 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर या इससे अधिक भी प्राप्त की जा सकती है। कोदो मिलेट की फसल सामान्यतः 90–110 दिनों में पककर तैयार हो जाती है, जो किस्म एवं जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब पौधों की बालियाँ (स्पाइकलेट) पककर भूरे रंग की हो जाती हैं और दाने कठोर हो जाते हैं, तब फसल कटाई के लिए तैयार मानी जाती है। कटाई सामान्यतः दरांती की सहायता से की जाती है।

कटाई के बाद पौधों को कुछ दिनों तक धूप में सुखाया जाता है, जिससे दानों में नमी की मात्रा कम हो जाती है। इसके बाद मड़ाई करके दानों को अलग किया जाता है। दानों को अच्छी तरह सुखाकर सुरक्षित स्थान पर भंडारित किया जाता है, ताकि भंडारण के दौरान कीट या फफूंद का प्रकोप न हो। कोदो मिलेट की फसल से दानों के साथ–साथ भूसा भी प्राप्त होता है, जिसका उपयोग पशुओं के

चारे के रूप में किया जाता है। इस प्रकार यह फसल किसानों के लिए खाद्यान्न के साथ–साथ पशुपालन के लिए भी उपयोगी होती है।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

कोदो मिलेट केवल पारंपरिक रूप से खाने योग्य अनाज ही नहीं है, बल्कि इसका प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन करके इसे आधुनिक खाद्य उद्योग में भी उपयोगी बनाया जा सकता है। यह फसल पोषण से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों के निर्माण में बहुत उपयुक्त है।

1. पारंपरिक उपयोग

कोदो मिलेट के दानों का सबसे सामान्य उपयोग खिचड़ी, दलिया, रोटी, उपमा, इडली, डोसा और खीर बनाने में किया जाता है। आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में कोदो मिलेट से बने व्यंजन स्थानीय आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसके अलावा दानों को भूनकर पाउडर या आटा बनाया जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न पकवानों में किया जा सकता है।

2. आधुनिक प्रसंस्कृत उत्पाद

वर्तमान में मिलेट आधारित उत्पादों की मांग बढ़ रही है, खासकर स्वास्थ्य और पोषण के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच। कोदो मिलेट से निम्नलिखित आधुनिक उत्पाद तैयार किए जा सकते हैंः

- **मिलेट बिस्कुट और स्नैक्सः** कोदो मिलेट के आटे से हेल्दी बिस्कुट, क्रैकर्स और स्नैक्स बनाए जाते हैं।
- **रेडी–टू–ईट खाद्य पदार्थः** दलिया, पोहा, इन्सटेंट खिचड़ी और मिश्रित अनाज आधारित खाद्य पैकेज तैयार किए जाते हैं।
- **मिलेट नूडल्स और पास्ताः** स्वास्थ्यवर्धक और ग्लूटेन–फ्री नूडल्स एवं पास्ता के लिए कोदो मिलेट का उपयोग किया जा सकता है।
- **मिलेट फ्लेक्स और एनर्जी बारः** ऊर्जा व पोषण बढ़ाने वाले फ्लेक्स, म्यूजली और एनर्जी बार में कोदो मिलेट का आटा या दाने मिलाकर उपयोग किया जाता है।

3. स्वास्थ्य लाभ और बाजार महत्व

कोदो मिलेट का ग्लूटेन–फ्री होना इसे सेलिएक रोग, डायबिटीज और वजन नियंत्रण वाले लोगों के लिए उपयुक्त बनाता है। इसके उच्च फाइबर और मिनरल कंटेंट के कारण इसे स्वास्थ्यवर्धक और पोषण–संपन्न उत्पाद के रूप में बाजार में अच्छी मांग मिल रही है।

4. मूल्य संवर्धन के उपाय

कोदो मिलेट से मूल्य संवर्धन करने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैंः

- **प्रसंस्करण और पैकेजिंगः** साफ–सुथरे दानों को आटा, फ्लेक्स या अन्य उत्पादों में बदलकर आकर्षक पैकेजिंग में बेचना।
- **संतुलित और मिश्रित उत्पादः** कोदो मिलेट को अन्य मिलेट या साबुत अनाज के साथ मिलाकर मिक्स फ्लेक्स या हेल्दी फूड पैकेज बनाना।
- **ब्रांडिंग और प्रचारः** मिलेट आधारित स्वास्थ्य उत्पादों को विशेष रूप से "ग्लूटेन–फ्री", "हेल्दी" और "पोषणवर्धक" के रूप में मार्केटिंग करना।

इस प्रकार कोदो मिलेट का प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन न केवल किसानों की आय बढ़ाने में मदद करता है, बल्कि उपभोक्ताओं को पोषण और स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी उत्पाद भी उपलब्ध कराता है। यह फसल पारंपरिक आहार से लेकर आधुनिक स्वास्थ्य उद्योग तक अपनी उपयोगिता का विस्तार कर रही है।

अध्याय ११

छद्म बाजरा (बकव्हीट)

1. परिचय

छद्म बाजरा या बकव्हीट एक उच्च पोषण वाला लघु अनाज है, जिसे "छद्म बाजरा" कहा जाता है क्योंकि इसके दाने और उपस्थिति बाजरे जैसी होती है, लेकिन यह वास्तव में बाजरा या किसी मिलेट परिवार का सदस्य नहीं है। यह Polygonaceae (रूमाल कुल) की फसल है और इसे ग्लूटेन–फ्री, स्वास्थ्यवर्धक और सीमांत कृषि के लिए उपयुक्त माना जाता है। बकव्हीट का इतिहास प्राचीन है। यह मुख्य रूप से भारत, नेपाल, भूटान, चीन, रूस और यूरोप के कुछ ठंडे क्षेत्रों में उगाई जाती रही है। भारत में यह फसल हिमालयी क्षेत्रों, उत्तराखंड, सिक्किम, हिमाचल प्रदेश और पूर्वोत्तर राज्यों में पारंपरिक रूप से उगाई जाती है। इसकी खेती का प्रारंभिक उद्देश्य आहार सुरक्षा और पोशण रहा है, क्योंकि यह कम उर्वरता वाली भूमि और ठंडी जलवायु में भी उत्पादन देती है। बकव्हीट का आहारिक महत्व अत्यधिक है। इसके दाने प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, आहार रेशा (फाइबर), विटामिन बी समूह और खनिज जैसे आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और पोटैशियम से समृद्ध होते हैं। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण सेलिएक रोगियों, डायबिटीज रोगियों और वजन नियंत्रित करने वाले लोगों के लिए आदर्श फसल है। पारंपरिक रूप से इसे खिचड़ी, दलिया, रोटी, उपमा, इडली, डोसा और हल्के स्नैक्स बनाने में उपयोग किया जाता है। आधुनिक समय में बकव्हीट का प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन तेजी से बढ़ रहा है। इसके दानों से मिलेट बिस्कुट, फ्लेक्स, एनर्जी बार, नूडल्स, पास्ता और स्वास्थ्यवर्धक पैकेज्ड फूड तैयार किए जा रहे हैं। यह किसानों के लिए आय बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के लिए एक लोकप्रिय फसल बनता जा रहा है। इसके अतिरिक्त बकव्हीट जलवायु परिवर्तन के अनुकूल फसल मॉडल के रूप में भी उभर रहा है। कम वर्षा, सीमांत भूमि और ठंडी जलवायु में यह फसल अच्छी उपज देती है, जिससे यह स्थिर और सतत कृषि प्रणाली का हिस्सा बनती है।

2. वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

छद्म बाजरा, जिसे बकव्हीट के नाम से भी जाना जाता है, विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओं में अलग–अलग नामों से प्रसिद्ध है। यह फसल अपने पोषण मूल्य, जलवायु सहनशीलता और सीमांत कृषि के लिए उपयुक्त होने के कारण कई पारंपरिक और आधुनिक आहारों में इस्तेमाल की जाती है।

- वनस्पतिक नाम : *Fagopyrum esculentum*
- कुल : Polygonaceae (रूमाल कुल)

बकव्हीट वास्तव में बाजरा या किसी मिलेट परिवार का सदस्य नहीं है। इसे ''Pseudo Millet'' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके दाने और आकार बाजरे जैसी दिखती हैं। यह Polygonaceae कुल का सदस्य है, जो मुख्यतः फूलदार और झाड़ीदार पौधों के लिए जाना जाता है।

स्थानीय नाम :

- हिंदीः छद्म बाजरा
- अंग्रेजीः Buckwheat
- कन्नड़ः कॉर्गु
- तमिलः कुवेरु
- तेलुगुः कुडुवा
- मराठीः कुटकी बाजरी
- नेपालीः फापरी

3. पोषण मूल्य

छद्म बाजरा (बकव्हीट) एक अत्यंत पोषण–संपन्न और स्वास्थ्यवर्धक फसल है। यह फसल न केवल पारंपरिक आहार का हिस्सा है, बल्कि ग्लूटेन–फ्री, उच्च प्रोटीन, फाइबर और मिनरल्स की दृष्टि से आधुनिक स्वास्थ्य आहारों में भी लोकप्रिय हो रही है। इसे "सुपर फूड" के रूप में भी माना जाता है क्योंकि इसके दाने और आटा कई रोगों से बचाव, पाचन सुधार और ऊर्जा प्रदान करने में सहायक हैं।

मुख्य पोषक तत्व

100 ग्राम बकव्हीट दाने में लगभग निम्नलिखित पोषक तत्व पाए जाते हैं:

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)	लाभ/महत्व
ऊर्जा	340–350 kcal	शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है
कार्बोहाइड्रेट	70–72 ग्राम	ऊर्जा का मुख्य स्रोत
प्रोटीन	12–13 ग्राम	मांसपेशियों और ऊतकों के लिए आवश्यक
वसा	2–3 ग्राम	ऊर्जा और हार्मोन संतुलन
आहार रेशा	10–12 ग्राम	पाचन सुधार, कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण
आयरन	2–3 मि.ग्रा.	एनीमिया से बचाव
कैल्शियम	18–25 मि.ग्रा.	हड्डियों और दांतों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण
मैग्नीशियम	150 मि.ग्रा.	तंत्रिका एवं मांसपेशी कार्य
पोटैशियम	200–220 मि.ग्रा.	रक्तचाप नियंत्रण और हृदय स्वास्थ्य
विटामिन B	1–2 मि.ग्रा.	ऊर्जा उत्पादन और मस्तिष्क स्वास्थ्य

4. वृद्धि हेतु जलवायु

छद्म बाजरा (बकव्हीट) एक ठंडी जलवायु–सहिष्णु फसल है, जिसे मुख्य रूप से पहाड़ी, सीमांत और वर्षा पर आधारित क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसकी वृद्धि और दानों की गुणवत्ता पर तापमान, वर्षा, आर्द्रता और दिन–रात की अवधि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बकव्हीट की फसल 15°C से 25°C के मध्य तापमान में सर्वोत्तम वृद्धि करती है। अंकुरण के लिए 15–20°C और फूल व दाना भरने के लिए 18–25°C तापमान अनुकूल होता है। अत्यधिक गर्मी या अत्यधिक ठंड पौधों की वृद्धि और दाने की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। बकव्हीट मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगती है और इसे लगभग 400–600 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाना उचित होता है। अत्यधिक नमी या जलभराव से जड़ें सड़ सकती हैं और रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। इसके अलावा यह फसल सूखा सहिष्णु है, इसलिए सीमांत और वर्षा–आधारित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। बकव्हीट एक लघु दिन की फसल है, जिसका फूलन और दाना भरना कम दिन की अवधि में होता है, जबकि लंबी दिन की अवधि में फूलन विलंबित हो सकता है। ठंडी और हल्की आर्द्रता वाली जलवायु बकव्हीट की पत्तियों और दानों के विकास के लिए

उपयुक्त होती है। अत्यधिक गर्मी में पुष्पन और दाना भरना प्रभावित होता है, जबकि बर्फीले क्षेत्रों या हल्की ठंड में फसल सुरक्षित रहती है और उच्च गुणवत्ता वाले दाने तैयार होते हैं। कुल मिलाकर, बकव्हीट की खेती के लिए आदर्श जलवायु 15–25°C तापमान, 400–600 मिमी वर्षा, मध्यम आर्द्रता और लघु दिन की अवधि वाली होती है। यही कारण है कि यह फसल सर्दी और षीतोश्ण क्षेत्रों के लिए आदर्श है और सीमांत, पहाड़ी एवं वर्षा–आधारित कृषि के लिए किसानों को कम जोखिम में बेहतर उत्पादन प्रदान करती है।

5. मृदा

बकव्हीट की खेती में मृदा का चयन और उसकी तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह फसल विशेष रूप से हल्की, भुरभुरी और जलनिकास वाली मिट्टी में सर्वोत्तम वृद्धि करती है। बकव्हीट सीमांत और पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल है, इसलिए इसे कच्ची, कम उर्वरता वाली और ढलान वाली भूमि में भी उगाया जा सकता है। इसके लिए मिट्टी का pH 5.5 से 7.0 तक होना आदर्श माना जाता है। भारी, चिकनी या जलभराव वाली मिट्टी में इसकी जड़ें आसानी से नहीं फैलती और फसल की वृद्धि प्रभावित होती है। हल्की और भुरभुरी मिट्टी में पौधों की जड़ें जल्दी फैलती हैं, जिससे पौधों को पानी और पोषक तत्व आसानी से मिलते हैं। इसके अलावा मिट्टी की संरचना अच्छी होने से वायु का संचार और जल धारण क्षमता भी बढ़ती है, जो फसल के विकास के लिए अनुकूल होती है। बकव्हीट में जैविक खाद का उपयोग फसल की उपज और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में मदद करता है। खेत में 5–10 टन गोबर या कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर डालना फायदेमंद होता है। इसके अलावा मिट्टी में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने के लिए बीज उपचार में जैव उर्वरक, जैसे Azotobacter और PSB (Phosphate Solubilizing Bacteria), का प्रयोग किया जा सकता है। उचित मृदा चयन, अच्छी तैयारी और जैविक व रासायनिक प्रबंधन के माध्यम से बकव्हीट की फसल में उच्च उपज, स्वस्थ पौधे और गुणवत्ता वाले दाने सुनिश्चित किए जा सकते हैं। इसलिए मृदा की जांच और उसकी तैयारी बकव्हीट की खेती का एक महत्वपूर्ण चरण है, जो फसल की सफलता और किसानों की आय के लिए निर्णायक भूमिका निभाता है।

6. उन्नत किस्में

बकव्हीट की खेती में उन्नत किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सही किस्म न केवल उच्च उपज देती है, बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता, पौधों की वृद्धि, दानों की गुणवत्ता और पोषण मूल्य को भी प्रभावित करती है। पारंपरिक किस्मों की तुलना में उन्नत किस्में कम अवधि में पकती हैं, पौधों की संरचना मजबूत होती है और उत्पादन अधिक स्थिर रहता है। भारत में कृषि अनुसंधान विभाग और

राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा बकव्हीट की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो अलग–अलग जलवायु, मिट्टी और खेती की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में:

1. **HRS–1** – यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, जो ठंडी और मध्यम तापमान वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे मजबूत और लंबाई में संतुलित होते हैं, जिससे फूल और दाने बेहतर मात्रा में तैयार होते हैं। यह किस्म उच्च उपज और अच्छे दाने की गुणवत्ता के लिए जानी जाती है।
2. **HRS–2** – विशेष रूप से पहाड़ी और शीतोष्ण क्षेत्रों के लिए विकसित की गई किस्म। यह फसल स्थिर उत्पादन, मजबूत तना और उच्च अंकुरण दर प्रदान करती है।
3. **RBT–1** – रोग प्रतिरोधक किस्म, जो विशेष रूप से पत्ती धब्बा, स्मट और ब्लास्ट रोगों के प्रति सहनशील है। इसके दाने बड़े, कठोर और पोषक तत्वों में अधिक समृद्ध होते हैं।
4. **RBT–2** – उच्च फाइबर और प्रोटीन सामग्री वाली किस्म। यह किस्म स्वास्थ्यवर्धक और प्रसंस्कृत उत्पादों (जैसे फ्लेक्स, म्यूजली और एनर्जी बार) के निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त है।
5. **Kashi Anmol** – यह किस्म उच्च उपज और बेहतर दाना आकार के लिए विकसित की गई है। यह मध्यम जलवायु और सीमांत भूमि के लिए अनुकूल है।
6. **Sikkim Selection** – सिक्किम और उत्तर–पूर्वी भारत के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म। यह फसल सर्दियों में बेहतर अंकुरण और फूलने की क्षमता देती है।
7. **Himalini** – यह किस्म अत्यधिक ठंड और हल्की बर्फ सहन कर सकती है। इसे हिमालयी क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त माना जाता है।
8. **RBT–3** – यह किस्म दाने की गुणवत्ता और पोषण मूल्य में श्रेष्ठ है। इसके दाने बड़े और मजबूत होते हैं और इसमें प्रोटीन और मिनरल्स की मात्रा अधिक होती है।
9. **HRS–3** – यह किस्म कम अवधि में पकने वाली है और वर्षा पर आधारित कृषि के लिए अनुकूल है। इसकी खेती से सीमांत किसानों को संतोषजनक उत्पादन मिलता है।

10. **RBT–4** – यह किस्म रोग प्रतिरोधक और उच्च पोषण मूल्य वाली है। इसमें दाने का रंग हल्का भूरा और आकार में मध्यम होता है, जिससे प्रसंस्कृत उत्पादों में इसका उपयोग अधिक उपयुक्त होता है।

इन उन्नत किस्मों के चयन से बकव्हीट की खेती में कई लाभ प्राप्त होते हैं। इनमें से किस्मों का चयन मिट्टी, जलवायु, फसल अवधि, रोग और कीट प्रबंधन की परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिए। उन्नत किस्मों का उपयोग करने से किसानों को उच्च उपज, बेहतर आर्थिक लाभ, रोग–प्रतिरोधक क्षमता और दानों की गुणवत्ता सुनिश्चित होती है। इसके अतिरिक्त, ये किस्में सीमांत भूमि, वर्षा–आधारित कृषि और पहाड़ी क्षेत्रों में स्थिर उत्पादन देती हैं, जिससे छोटे और सीमांत किसानों की आय में वृद्धि होती है।

7. बुवाई का समय

बकव्हीट की फसल में सही समय पर बुवाई करना उच्च उपज और दानों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस फसल की वृद्धि और विकास पर मौसम, तापमान और वर्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बकव्हीट एक सर्दियों और शीतोष्ण क्षेत्र की फसल है, इसलिए इसे उचित समय पर बोना जरूरी होता है। सामान्यतः बकव्हीट की बुवाई अक्टूबर से नवम्बर तक की जाती है। इस समय बुवाई करने से पौधों को ठंडी मौसम में पर्याप्त वृद्धि और विकास का अवसर मिलता है और यह फूलने और दाना भरने की अवधि में अनुकूल तापमान और आर्द्रता प्राप्त करते हैं। कुछ ऊँचाई वाले और पहाड़ी क्षेत्रों में बुवाई का समय अक्टूबर के अंत तक बढ़ाया जा सकता है, ताकि फसल शीतकालीन परिस्थितियों में अच्छी तरह पक सके। बुवाई के लिए बीज की दर लगभग 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर होती है। बीज को 3–4 सेंटीमीटर गहराई पर बोना उपयुक्त माना जाता है। कतारबद्ध बुवाई (Row to Row Distance: 25–30 सेमी) अपनाने से पौधों को पर्याप्त स्थान मिलता है और निराई–गुड़ाई तथा पानी देने का काम आसान होता है। बकव्हीट को वर्षा आधारित और सीमांत क्षेत्रों में उगाने के लिए भी यह समय उपयुक्त है, क्योंकि इस अवधि में मध्यम वर्षा और उचित तापमान उपलब्ध रहता है। समय पर बुवाई न करने पर पौधों का अंकुरण धीमा पड़ सकता है, फूल और दाना भरना प्रभावित होता है और अंतिम उपज घट सकती है।

8. सिंचाई

बकव्हीट की फसल मध्यम जल आवश्यकताओं वाली होती है और यह वर्षा पर आधारित या सीमांत क्षेत्रों में भी उगाई जा सकती है। हालांकि, उचित और समय पर सिंचाई करने से उपज, दानों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार होता है। बकव्हीट की जड़ें अपेक्षाकृत उथली होती हैं, इसलिए मृदा नमी बनाए रखना फसल

की स्थिर वृद्धि के लिए आवश्यक है। सामान्यतः बकव्हीट की सिंचाई बुवाई के बाद पहली आवश्यकता पर की जाती है, जब बीज अंकुरित हो रहे होते हैं। इसके बाद पौधों की वृद्धि और पुश्पन चरण में दो मुख्य सिंचाई आवश्यक होती हैं। पहले सिंचाई से पौधों की जड़ें मजबूती से फैलती हैं और अंकुरण बेहतर होता है, जबकि दूसरी सिंचाई फूल आने और दाना भरने के समय फसल की उपज और दाने की गुणवत्ता बढ़ाती है।

यदि बकव्हीट को वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाया जा रहा है, तो वर्षा पर निर्भरता अधिक रहती है, लेकिन शुष्क या सीमांत क्षेत्रों में सिंचाई की 2–3 खुराक दी जाती हैं। इन सिंचाईयों का अंतर 20–25 दिनों का होना आदर्श माना जाता है। सिंचाई के समय ध्यान रखें कि मृदा में जलभराव न हो, क्योंकि इससे जड़ें सड़ सकती हैं और रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। बकव्हीट की फसल के लिए सूखी और हल्की मिट्टी में सतही सिंचाई सबसे उपयुक्त होती है। तालाबंदी या भारी सिंचाई से बचना चाहिए। इस फसल में ट्रिकल इरिगेशन या ड्रिप सिस्टम भी लाभकारी साबित हो सकता है, जिससे पानी की बचत होती है और पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

बकव्हीट की फसल के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन और उचित उर्वरक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल पौधों की स्वस्थ वृद्धि और विकास सुनिश्चित करता है, बल्कि उपज और दानों की गुणवत्ता भी बढ़ाता है। बकव्हीट को हल्की, भुरभुरी और पोषक तत्वों से समृद्ध मिट्टी में उगाना अनुकूल होता है, लेकिन सीमांत या कम उर्वरता वाली भूमि में भी उचित उर्वरक प्रबंधन से अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मुख्य पोषक तत्वः

1. नाइट्रोजन : बकव्हीट की वृद्धि के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह पत्तियों और तनों के विकास में सहायक होता है। नाइट्रोजन की कमी से पौधे हरे और मजबूत नहीं होते, फूल और दाना भरना प्रभावित होता है। उर्वरक के रूप में 50–60 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन बोवाई के समय आधा और शेष पुष्पन के दौरान दिया जाता है।

2. फॉस्फोरस : जड़ों के विकास और फूल व दाना बनने के लिए आवश्यक है। बकव्हीट में फॉस्फोरस की कमी से दाने छोटे और उपज कम होती है। सामान्यतः 40–50 किग्रा/हेक्टेयर फॉस्फोरस बोवाई से पहले या साथ में दिया जाता है।

3. पोटाश : फसल की स्ट्रक्चर, रोग प्रतिरोधक क्षमता और दाना भरने के लिए महत्वपूर्ण है। पोटाश की कमी से पौधों का तना कमजोर और दाने की संख्या कम हो जाती है। जरूरत के अनुसार 40–50 किग्रा/हेक्टेयर पोटाश लागू किया जाता है।

सूक्ष्म तत्वः

बकव्हीट की फसल में जिंक, बोरॉन और मैंगनीज जैसे सूक्ष्म तत्व भी महत्वपूर्ण हैं। इनकी कमी से फूल और दाना बनने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। खेत में आवश्यकता अनुसार सतही छिड़काव या मृदा में मिश्रण करके इन तत्वों की कमी पूरी की जा सकती है।

जैविक उर्वरक का उपयोगः

बकव्हीट की खेती में जैविक खाद और जैव उर्वरक का उपयोग लाभकारी साबित होता है। गोबर खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कंपोस्ट मिट्टी की उर्वरता, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधि बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त Azotobacter और Phosphate Solubilizing Bacteria का बीज उपचार या मिट्टी में मिश्रण करने से पौधों को नाइट्रोजन और फॉस्फोरस आसानी से उपलब्ध होता है।

बकव्हीट की खेती में संतुलित पोषक तत्व और उर्वरक प्रबंधन फसल की सफलता के लिए निर्णायक है। उचित मात्रा, सही समय और सही प्रकार के उर्वरक का उपयोग करके किसान उच्च गुणवत्ता वाले दाने, संतुलित पोषण और स्थिर उत्पादन सुनिश्चित कर सकते हैं।

10. खरपतवार प्रबंधन

बकव्हीट की फसल में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि खरपतवार पौधों से पोशक तत्व, पानी और प्रकाश की प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि समय पर खरपतवार का प्रबंधन न किया जाए, तो बकव्हीट की उपज और दानों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। विशेष रूप से प्रारंभिक वृद्धि के दौरान, जब पौधे छोटे और कमजोर होते हैं, खरपतवार तेजी से फैलकर फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

खरपतवारों का प्रकारः

बकव्हीट के खेत में मुख्य रूप से सामान्य पत्तेदार और तना वाले खरपतवार पाए जाते हैं। कुछ प्रमुख खरपतवार हैंः

- सोलानम, अमरन्थस, पोलेमोनी, क्रूसिफेरा परिवार के खरपतवार
- जड़ वाले खरपतवार जैसे अलफाल्फा, क्लोवर
- जल निकासी कमजोर क्षेत्रों में पानी और नमी वाले खरपतवार

खरपतवार प्रबंधन की विधियाँः

1. सांस्कृतिक (Cultural) विधियाँः

- **कतारबद्ध बुवाई :** बुवाई कतारों में करने से पौधों के लिए पर्याप्त स्थान और प्रकाश मिलता है और खरपतवार कम विकसित होते हैं।

- **समय पर बुवाईः** उचित बुवाई से बकव्हीट जल्दी अंकुरित होकर खरपतवार के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है।
- **जुताई और मिट्टी ढीली करनाः** खेत में समय–समय पर हल्की जुताई से उभरते खरपतवार नष्ट होते हैं।

2. भौतिक विधियाँः

- प्रारंभिक अवस्था में हाथ से निराई या छोटे यंत्रों से खरपतवार निकालना प्रभावी होता है।
- फसल की बढ़ती उम्र में सतही निराई करके खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है।

3. रासायनिक विधियाँः

- यदि खरपतवार अधिक हैं, तो सुरक्षित हर्बिसाइड्स का प्रयोग किया जा सकता है।
- बकव्हीट में उपयुक्त हर्बिसाइड्स जैसे Pre-emergence या Post-emergence छिड़काव से खरपतवार नियंत्रण संभव है।
- रसायनों का उपयोग करते समय निर्देशों का पालन और समय का ध्यान रखना आवश्यक है, ताकि फसल को कोई हानि न पहुंचे।

11. फसल सुरक्षा

बकव्हीट की फसल में कीट और रोगों से होने वाले नुकसान को नियंत्रित करना उपज और दानों की गुणवत्ता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। बकव्हीट में रोग और कीट फसल के विभिन्न चरणों–अंकुरण, वृद्धि, फूल और दाना भरने–में प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए समय पर निगरानी, जैविक और रासायनिक प्रबंधन फसल सुरक्षा के लिए अनिवार्य है।

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

बकव्हीट में कुछ प्रमुख कीट हैं, जो पौधों की पत्तियाँ, तना और दाने को नुकसान पहुंचाते हैंः

1. एप्पल हॉपर – यह पत्तियों का रस चूसता है, जिससे पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है।

प्रबंधनः समय–समय पर खेत की जांच करें, हल्की वर्षा के बाद कीट का प्रकोप अधिक होता है। जैविक नियंत्रण के लिए छममउ–इंमक स्प्रे या कीटनाशक का उचित प्रयोग किया जा सकता है।

2. एसीटिया बग – पत्तियों पर झुर्रियां और दाने पर चोट करता है।

प्रबंधनः संक्रमित पौधों को हटाएं और नीम तेल या योग्य हर्बिसाइड का छिड़काव करें।

3. कंडिड बग – फूल और अंकुरित दानों पर हमला करता है, जिससे दाने खराब हो जाते हैं।

प्रबंधनः संतुलित पोषक तत्व और समय पर कीट नियंत्रण के लिए सुरक्षित कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यक है।

4. कृमी – जड़ों को प्रभावित करके पौधों की वृद्धि धीमी कर देते हैं।

प्रबंधनः बुवाई से पहले भूमि उपचार, रोटेशन और जैविक उर्वरक का प्रयोग लाभकारी होता है।

सुरक्षा उपायः

1. खेत में नियमित निरीक्षण और Integrated Pest Management अपनाएँ।
2. जैविक कीटनाशक जैसे नीम, बीटी (Bacillus thuringiensis) का प्रयोग करें।
3. कीटनाशक का चयन और खुराक सही समय और निर्देशानुसार करें।

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

बकव्हीट की फसल में रोग प्रमुख रूप से पत्तियों, तनों और दानों को प्रभावित करते हैं। कुछ मुख्य रोग हैंः

1. पत्ती धब्बा – पत्तियों पर भूरे धब्बे बनते हैं और पत्तियाँ झड़ने लगती हैं।

प्रबंधनः रोग प्रतिरोधक किस्मों का उपयोग करें, खेत की साफ–सफाई रखें और फफूंदनाशक का समय पर छिड़काव करें।

2. ब्लास्ट – तने और दानों पर धब्बे बनाते हैं, जिससे दाने कमजोर और फसल क्षतिग्रस्त हो जाती है।

प्रबंधनः रोग मुक्त बीज का प्रयोग करें, फसल में पर्याप्त दूरी बनाएँ और सुरक्षित फफूंदनाशक छिड़काव करें।

3. मूसलिनिया – पत्तियों पर सफेद परदा जैसा कवक बनाता है, जिससे पत्तियाँ मुरझा जाती हैं।

प्रबंधनः खेत में अच्छी जल निकासी और वेंटिलेशन रखें, फफूंदनाशक छिड़काव समय पर करें।

4. सड़न रोग – जड़ों और तने की सड़न कर देता है, जिससे पौधे मुरझा जाते हैं।

प्रबंधनः बुवाई से पहले भूमि उपचार और जैव उर्वरक का प्रयोग करें, और भारी जलभराव से बचें।

सामान्य सुरक्षा उपायः

1. रोग प्रतिरोधक और उन्नत किस्मों का चयन करें।
2. फसल चक्र अपनाएँ, जिससे मिट्टी में रोगजनक घटें।
3. खेत की सफाई और पुराने पौधों अवशेषों को जलाना या नष्ट करना आवश्यक है।
4. रोग और कीट दोनों के लिए IDM (Integrated Disease Management) अपनाना फसल सुरक्षा की कुंजी है।

12. उपज

बकव्हीट की फसल में उपज कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे किस्म, मिट्टी की उर्वरता, जलवायु, सिंचाई, पोषक तत्व प्रबंधन और फसल सुरक्षा। सही प्रबंधन और उन्नत किस्मों के चयन से उच्च उपज प्राप्त की जा सकती है। आम तौर पर बकव्हीट की औसत उपज 1.0–1.5 टन प्रति हेक्टेयर होती है, जबकि उन्नत किस्मों और सही कृषि प्रथाओं के पालन से यह 1.8–2.5 टन प्रति हेक्टेयर तक बढ़ सकती है। उपज पर जलवायु का विशेष प्रभाव होता है। आदर्ष तापमान, मध्यम वर्षा और संतुलित आर्द्रता से फसल में फूल और दाना भरने की प्रक्रिया पूर्ण होती है, जिससे दाने बड़े, भारी और पोषक तत्वों से समृद्ध होते हैं। इसके विपरीत, अत्यधिक गर्मी, सूखा या असमय वर्षा से दाने छोटे, हल्के और कम गुणवत्ता वाले हो सकते हैं।

उपज में वृद्धि के लिए समय पर बुवाई, संतुलित उर्वरक, सिंचाई और फसल सुरक्षा अनिवार्य हैं। साथ ही, कतारबद्ध बुवाई और पौधों का उचित अंतर रखने से पौधों को पर्याप्त प्रकाश और पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं, जिससे उपज में 10–15% तक बढ़ोतरी संभव है। बकव्हीट के दाने अच्छे आकार और वजन वाले होने चाहिए, क्योंकि प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के लिए गुणवत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण है। उच्च उपज और गुणवत्ता वाले दाने किसानों को अधिक आर्थिक लाभ देते हैं और सीमांत तथा पहाड़ी क्षेत्रों में खेती को सतत बनाते हैं।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद/मूल्य संवर्धन

बकव्हीट के दाने उच्च पोषण और ग्लूटेन–फ्री होने के कारण खाद्य उद्योग में व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। सही प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से किसानों को अधिक आर्थिक लाभ और फसल की मांग में वृद्धि सुनिश्चित होती है। बकव्हीट को सीधे उपभोक्ताओं को बेचने के बजाय प्रसंस्कृत उत्पादों के रूप में विपणन करना अधिक लाभकारी होता है।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पादः

1. बकव्हीट आटाः बकव्हीट के दानों को पीसकर आटा बनाया जाता है, जिसका उपयोग रोटी, पराठा, पिज्जा बेस और हेल्थ केक बनाने में किया जाता है। यह आटा ग्लूटेन–फ्री और प्रोटीन–समृद्ध होता है, इसलिए स्वास्थ्यवर्धक आहार में इसकी मांग अधिक है।

2. बकव्हीट फ्लेक्स : दानों को भिगोकर भाप में पकाया और सुखाया जाता है, जिससे फ्लेक्स तैयार होते हैं। यह नाश्ते, म्यूजली और एनर्जी बार बनाने के लिए उपयुक्त है।

3. साबुत दाने : साबुत दाने को उबालकर या भूनकर सलाद, खिचड़ी या सूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह उत्पाद स्वस्थ भोजन के रूप में लोकप्रिय है।

4. मल्टीग्रेन उत्पादः बकव्हीट को अन्य अनाजों जैसे ज्वार, बाजरा या ओट्स के साथ मिलाकर मल्टीग्रेन फ्लोर, स्नैक्स और ब्रेड तैयार किए जाते हैं। इससे उत्पाद का पोशण मूल्य और बाजार में मांग बढ़ती है।

5. साबुत अनाज का तिलध्कच्चा उपभोगः बकव्हीट के दाने भूनकर या अंकुरित करके स्वास्थ्यवर्धक नाश्ते और एनर्जी फूड तैयार किए जा सकते हैं।

मूल्य संवर्धन के लाभः

1. किसान सीधे कच्चे दानों की तुलना में अधिक मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।
2. प्रसंस्करण से उत्पाद की शेल्फ लाइफ और गुणवत्ता बढ़ती है।
3. स्थानीय और राष्ट्रीय बाजार में स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों की मांग बढ़ती है।
4. सीमांत और पहाड़ी क्षेत्रों के किसानों के लिए स्थिर आय का स्रोत बनता है।

अन्य व्यावहारिक पहलूः

1. बकव्हीट का प्रसंस्करण सामूहिक स्तर पर करके भी किया जा सकता है, जिससे लागत कम होती है और किसानों को प्रत्यक्ष लाभ मिलता है।
2. पैकेजिंग और ब्रांडिंग से उत्पाद की बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाई जा सकती है।
3. सर्टिफिकेशन (जैविक, ग्लूटेन–फ्री) होने पर उत्पाद की कीमत और मांग में और वृद्धि होती है।

बकव्हीट के प्रसंस्कृत उत्पाद और मूल्य संवर्धन से किसानों को न केवल उच्च आय मिलती है, बल्कि फसल का अधिकतम उपयोग और पोषण मूल्य सुनिश्चित होता है। सही तकनीक और विपणन के माध्यम से बकव्हीट को स्वास्थ्यवर्धक, व्यावसायिक और टिकाऊ फसल के रूप में विकसित किया जा सकता है।

अध्याय १२

राजगीरा / अमरंथ

1. परिचय

राजगीरा (अमरंथ) एक महत्वपूर्ण लघु अनाज एवं पत्तेदार फसल है, जिसे प्राचीन काल से मानव आहार में उपयोग किया जाता रहा है। यह फसल अत्यंत पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक तथा बहुउपयोगी होने के कारण विशेष महत्व रखती है। राजगीरा को "सुपर फूड" के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन, आहार रेशा (फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। राजगीरा की विशेषता यह है कि यह फसल कम अवधि में तैयार हो जाती है तथा प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता पाई जाती है, जिससे यह वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल मानी जाती है। इसके पौधे मध्यम से अधिक ऊँचाई के होते हैं तथा इसके बीज छोटे, गोलाकार एवं हल्के रंग के होते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी पत्तियाँ भी सब्जी के रूप में उपयोग की जाती हैं, जो पोषण से भरपूर होती हैं।

भारत में राजगीरा की खेती उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा हिमालयी क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल खरीफ एवं कुछ स्थानों पर रबी मौसम में भी उगाई जाती है। वर्तमान समय में संतुलित आहार तथा पोषण सुरक्षा के लिए राजगीरा का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। पोषण की दृष्टि से राजगीरा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें विशेष रूप से लाइसीन अमीनो अम्ल पाया जाता है, जो अन्य अनाजों में कम मात्रा में मिलता है। इसके अलावा इसमें आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा अन्य खनिज तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। राजगीरा ग्लूटेन–फ्री होता है, इसलिए यह ग्लूटेन संवेदनशील व्यक्तियों तथा मधुमेह रोगियों के लिए भी लाभदायक माना जाता है।

2. वानस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल

राजगीरा (अमरंथ) एक महत्वपूर्ण फसल है, जो अमरैंथेसी कुल की सदस्य है। यह एक शाकीय पौधा है, जिसकी वृद्धि तीव्र होती है तथा यह विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में आसानी से उगाया जा सकता है। राजगीरा की कई प्रजातियाँ पाई

जाती हैं, जिनमें कुछ का उपयोग अनाज के रूप में तथा कुछ का उपयोग पत्तेदार सब्जी के रूप में किया जाता है।

वानस्पतिक वर्गीकरण :

- वानस्पतिक नाम : *Amaranthus spp.*
- कुल : *Amaranthaceae*
- वंश : *Amaranthu*
- जाति : विभिन्न प्रजातियाँ (जैसे *Amaranthus hypochondriacus*, *Amaranthus cruentus*, *Amaranthus caudatu*)

राजगीरा का पौधा सामान्यतः 1 से 2 मीटर तक ऊँचा होता है। इसका तना सीधा, मजबूत तथा कुछ हद तक रसीला होता है। पौधे में शाखाएँ कम या अधिक हो सकती हैं, जो प्रजाति पर निर्भर करती हैं। इसकी पत्तियाँ चौड़ी, अंडाकार या लैंसीओलेट आकार की होती हैं तथा इनका रंग हरा या लाल हो सकता है। राजगीरा के पौधे के शीर्ष पर पुष्पक्रम गुच्छेदार (पैनिकल या स्पाइक) प्रकार का होता है, जिसमें छोटे–छोटे फूल होते हैं। इन फूलों से अत्यंत छोटे, गोलाकार तथा हल्के रंग (सफेद, क्रीम या हल्के भूरे) के बीज विकसित होते हैं। यही बीज खाद्य उपयोग के लिए प्रयुक्त होते हैं।

स्थानीय नाम : भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राजगीरा को अलग–अलग नामों से जाना जाता है–

- हिंदीः राजगीरा, चौलाई
- अंग्रेजीः *Amaranth*
- संस्कृतः राजगिरि
- मराठीः राजगिरा
- गुजरातीः राजगिरो
- तमिलः कीरै
- तेलुगुः थोताकूरा
- कन्नड़ः दंथा सॉप्पु
- मलयालमः चीर

3. पोषण मूल्य

राजगीरा (अमरंथ) एक अत्यंत पौष्टिक लघु अनाज है, जिसे "सुपर फूड" के रूप में भी जाना जाता है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों

का समृद्ध स्रोत है। राजगीरा के दानों में कार्बोहाइड्रेट, उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन, वसा, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। राजगीरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें लाइसीन (Lysine) नामक आवश्यक अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो सामान्यतः अन्य अनाजों में कम होता है। यह शरीर की वृद्धि एवं ऊतकों के निर्माण में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें मेथियोनीन एवं ट्रिप्टोफैन जैसे अन्य आवश्यक अमीनो अम्ल भी पाए जाते हैं, जिससे इसका प्रोटीन उच्च गुणवत्ता का माना जाता है।

राजगीरा में आहार रेशा (फाइबर) की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने तथा कब्ज जैसी समस्याओं को कम करने में सहायक होती है। इसमें आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम तथा मैग्नीशियम जैसे खनिज तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जो शरीर के समुचित विकास तथा विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। राजगीरा ग्लूटेन–फ्री होता है, इसलिए यह ग्लूटेन से संवेदनशील व्यक्तियों के लिए उपयुक्त आहार है। साथ ही इसका ग्लाइसेमिक इंडेक्स अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए भी लाभदायक माना जाता है। इसके नियमित सेवन से हृदय स्वास्थ्य में सुधार, हड्डियों की मजबूती तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायता मिलती है।

प्रति 100 ग्राम राजगीरा के दानों में औसतन पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा
ऊर्जा	लगभग 350–370 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	65–70 ग्राम
प्रोटीन	13–15 ग्राम
वसा	6–7 ग्राम
आहार रेशा (फाइबर)	6–8 ग्राम
कैल्शियम	150–200 मिलीग्राम
आयरन	7–9 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	250–300 मिलीग्राम

4. वृद्धि हेतु जलवायु

राजगीरा (अमरंथ) एक ऐसी फसल है, जो उश्ण एवं अर्ध–उष्णकटिबंधीय जलवायु में अच्छी तरह विकसित होती है। यह फसल विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन की क्षमता रखती है, जिसके कारण इसे वर्षा आधारित तथा सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। राजगीरा की फसल मध्यम से उच्च तापमान में अच्छी वृद्धि करती है तथा इसमें सूखा सहन करने की क्षमता भी पाई जाती है। राजगीरा की सफल खेती के लिए सामान्यतः 20°C से

35°C तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसके अंकुरण के लिए 20–25°C तापमान सर्वोत्तम रहता है, जबकि पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए 25–30°C तापमान अनुकूल होता है। अत्यधिक कम तापमान या पाला इस फसल के लिए हानिकारक होता है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

यह फसल सामान्यतः 500 से 1000 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगाई जा सकती है। हालांकि राजगीरा में सूखा सहन करने की क्षमता होती है, फिर भी इसकी प्रारंभिक वृद्धि तथा पुष्पन अवस्था में पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। अत्यधिक वर्षा या जलभराव की स्थिति फसल के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि इससे जड़ों का विकास प्रभावित होता है और पौधों में रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है। राजगीरा एक प्रकाश प्रिय (light & loving) फसल है, जिसे अच्छी वृद्धि के लिए पर्याप्त धूप की आवश्यकता होती है। छायादार परिस्थितियों में इसकी वृद्धि एवं उत्पादन प्रभावित हो सकता है। यह फसल कम अवधि की होती है और सामान्यतः 90 से 120 दिनों में तैयार हो जाती है, जो प्रजाति एवं जलवायु पर निर्भर करता है। भारत में राजगीरा की खेती मुख्य रूप से खरीफ मौसम में की जाती है, जब मानसून के दौरान पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। कुछ क्षेत्रों में इसे रबी मौसम में भी उगाया जाता है, जहाँ तापमान एवं नमी की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं।

5. मृदा

राजगीरा (अमरंथ) की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक की जा सकती है, क्योंकि यह फसल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है। फिर भी अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अच्छी जल निकास वाली उपजाऊ मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। राजगीरा की जड़ प्रणाली अच्छी तरह विकसित होती है, जिससे यह हल्की से मध्यम बनावट वाली मिट्टियों में बेहतर वृद्धि करता है। राजगीरा की सफल खेती के लिए दोमट तथा बलुई दोमट मृदा सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इन मृदाओं में जल निकास अच्छा होता है तथा पौधों की जड़ों को पर्याप्त वायु एवं नमी मिलती है, जिससे पौधों की वृद्धि और विकास सुचारू रूप से होता है। इसके अतिरिक्त, यह फसल हल्की काली मिट्टी में भी उगाई जा सकती है, बशर्ते उसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो।

यह फसल अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है, इसलिए इसे वर्षा आधारित एवं सीमांत क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जाता है। हालांकि अत्यधिक भारी, चिकनी तथा जलभराव वाली मृदाएँ राजगीरा की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं, क्योंकि जलभराव की स्थिति में जड़ें सड़ सकती हैं तथा पौधों की वृद्धि बाधित हो जाती है। राजगीरा की खेती के लिए मृदा का pH मान

लगभग 6.0 से 7.5 के बीच उपयुक्त माना जाता है। इस pH सीमा में पौधों को आवश्यक पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे फसल की वृद्धि और उत्पादन बेहतर होता है। खेत की तैयारी करते समय मृदा को भुरभुरी एवं खरपतवार रहित बनाना आवश्यक होता है। अच्छी तरह जुताई करने से मृदा की संरचना सुधरती है और पौधों के अंकुरण तथा जड़ों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है।

6. उन्नत किस्में

राजगीरा (अमरंथ) की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत एवं क्षेत्र के अनुकूल किस्मों का चयन करना अत्यंत आवश्यक होता है। वैज्ञानिकों द्वारा विकसित उन्नत किस्में अधिक उत्पादन देने के साथ–साथ रोगों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील होती हैं। इन किस्मों के उपयोग से फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। भारत में राजगीरा की कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जिनका उपयोग विभिन्न राज्यों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। कुछ किस्में दाना उत्पादन के लिए उपयुक्त होती हैं, जबकि कुछ पत्तेदार सब्जी के रूप में उपयोग के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं।

प्रमुख उन्नत किस्में:

1. **आरएमए–7 (RMA–7):** यह एक उन्नत दाना किस्म है, जो अच्छी उपज देने वाली तथा विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन क्षमता रखने वाली है।
2. **आरएमए –8 (RMA–8):** यह किस्म मध्यम अवधि में तैयार होती है तथा इसके दाने अच्छी गुणवत्ता के होते हैं।
3. **आरएमए –9 (RMA–9):** यह अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है तथा सूखा सहन करने की क्षमता रखती है।
4. **गौरा (GAURA):** यह एक लोकप्रिय किस्म है, जो उत्तरी भारत के क्षेत्रों में अधिक उगाई जाती है तथा इसकी उपज अच्छी होती है।
5. **अन्नपूर्णा (ANNAPURNA):** यह किस्म उच्च उत्पादन देने वाली तथा अनुकूल परिस्थितियों में अच्छी वृद्धि करने वाली है।
6. **सुवर्णा (SUVARNAA):** यह किस्म मध्यम अवधि की होती है तथा इसके दाने पौष्टिक एवं उच्च गुणवत्ता के होते हैं।
7. **पीआरए –1 (PRA–1):** यह किस्म विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा स्थिर उत्पादन देती है।

7. बुवाई का समय

राजगीरा (अमरंथ) की फसल का उत्पादन काफी हद तक बुवाई के समय पर निर्भर करता है। समय पर बुवाई करने से बीजों का अंकुरण अच्छा होता है, पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है तथा अधिक उपज प्राप्त होती है। विलंब से की गई बुवाई से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उत्पादन में कमी आ सकती है। राजगीरा की बुवाई मुख्य रूप से खरीफ मौसम में की जाती है। सामान्यतः इसकी बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक करना उपयुक्त माना जाता है, जब मानसून की वर्षा प्रारंभ हो जाती है और मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसान पहली या दूसरी अच्छी वर्षा के बाद बुवाई करना उचित समझते हैं, जिससे अंकुरण अच्छा होता है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर रहती है।

जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है, वहाँ राजगीरा की बुवाई मई के अंत से जून के प्रारंभ तक भी की जा सकती है। इससे फसल का विकास जल्दी होता है तथा समय पर कटाई संभव हो पाती है। कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर पहाड़ी या ठंडे क्षेत्रों में, राजगीरा की बुवाई रबी मौसम में भी की जाती है, जहाँ तापमान एवं नमी की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। समय पर बुवाई करने से फसल की विभिन्न अवस्थाएँ जैसे अंकुरण, पुष्पन एवं दाना भरने की प्रक्रिया अनुकूल जलवायु परिस्थितियों में पूर्ण होती हैं, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, देर से बुवाई करने पर फसल को प्रतिकूल तापमान, नमी की कमी या कीट एवं रोगों के अधिक प्रकोप का सामना करना पड़ सकता है।

8. सिंचाई

राजगीरा (अमरंथ) की फसल सामान्यतः वर्षा आधारित परिस्थितियों में उगाई जाती है और इसमें सूखा सहन करने की अच्छी क्षमता होती है। इसलिए अधिकांश क्षेत्रों में इस फसल को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। यदि वर्षा समय पर एवं पर्याप्त मात्रा में होती रहे, तो फसल का विकास सामान्य रूप से होता रहता है। फिर भी, जिन क्षेत्रों में वर्षा की कमी हो या लंबे समय तक वर्शा न हो, वहाँ फसल की अच्छी वृद्धि एवं अधिक उत्पादन के लिए सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। विशेष रूप से फसल की अंकुरण अवस्था, प्रारंभिक वृद्धि अवस्था, पुष्पन (फूल आने) की अवस्था तथा दाना भरने की अवस्था में पर्याप्त नमी की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है। इन अवस्थाओं में नमी की कमी होने पर पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है तथा दानों का विकास ठीक से नहीं हो पाता।

सिंचित क्षेत्रों में सामान्यतः राजगीरा की फसल को 2–3 हल्की सिंचाइयाँ देना पर्याप्त होता है। पहली सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद या अंकुरण के समय, दूसरी सिंचाई 20–25 दिन बाद तथा तीसरी सिंचाई पुष्पन या दाना भरने की अवस्था में

दी जा सकती है। हल्की एवं समय पर सिंचाई करने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राजगीरा की फसल जलभराव को सहन नहीं कर पाती। खेत में पानी का ठहराव होने से जड़ों में सड़न हो सकती है तथा पौधों की वृद्धि रुक जाती है। इसलिए खेत में अच्छी जल निकास व्यवस्था होना अत्यंत आवश्यक है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

राजगीरा (अमरंथ) की फसल सामान्यतः कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है, फिर भी अधिक उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक होता है। उचित उर्वरक प्रबंधन से पौधों की वृद्धि सुदृढ़ होती है, पत्तियों एवं दानों का विकास बेहतर होता है तथा कुल उत्पादकता में वृद्धि होती है। सबसे पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः 5–10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देनी चाहिए। इससे मृदा की उर्वरता, संरचना एवं जलधारण क्षमता में सुधार होता है तथा सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ती है।

रासायनिक उर्वरकों के रूप में राजगीरा की फसल के लिए सामान्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का संतुलित उपयोग करना चाहिए। सामान्य अनुशंसित मात्रा निम्न प्रकार है–

- **नाइट्रोजन :** 40–60 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- **फॉस्फोरस :** 20–30 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- **पोटाश :** 20–30 किग्रा प्रति हेक्टेयर

इन उर्वरकों में से फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय खेत में मिला देनी चाहिए। शेष आधी नाइट्रोजन को फसल की 25–30 दिन की अवस्था पर टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए, जिससे पौधों की वृद्धि में तेजी आती है। यदि मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो, तो जिंक सल्फेट का प्रयोग भी लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त, जैव उर्वरकों जैसे अजोटोबैक्टर या पीएसबी (Phosphate Solubilizing Bacteria) का उपयोग करने से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है और मृदा की उर्वरता में सुधार होता है। उर्वरकों का प्रयोग हमेशा मृदा परीक्षण के आधार पर करना अधिक लाभकारी होता है, क्योंकि इससे आवश्यकतानुसार सही मात्रा में पोशक तत्व उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

10. खरपतवार प्रबंधन

राजगीरा (अमरंथ) की फसल में खरपतवार एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उभर सकते हैं, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में। खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्वों, नमी, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है तथा उपज में कमी आ सकती है। इसलिए समय पर एवं प्रभावी खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है। राजगीरा की फसल में प्रारंभिक 20 से 40 दिन खरपतवार नियंत्रण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इस अवधि में यदि खरपतवारों को नियंत्रित नहीं किया जाए, तो वे तेजी से बढ़कर फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इसलिए इस समय विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है।

खरपतवार नियंत्रण के लिए सामान्यतः दो बार निराई–गुड़ाई करना उपयुक्त रहता हैः

- पहली निराईः बुवाई के 20–25 दिन बाद
- दूसरी निराईः 35–40 दिन बाद

इससे खेत में उगने वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं और पौधों को पर्याप्त पोषक तत्व एवं नमी प्राप्त होती है, जिससे उनकी वृद्धि बेहतर होती है। जहाँ श्रमिकों की कमी हो या खरपतवारों का प्रकोप अधिक हो, वहाँ रासायनिक विधि का भी उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए बुवाई के तुरंत बाद प्री–इमर्जेन्स शाकनाशी पेंडिमेथालिन का प्रयोग लगभग 0.75–1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से किया जा सकता है। यह प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक विधियाँ भी खरपतवार नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जैसे–

- समय पर बुवाई करना
- उचित पौध दूरी बनाए रखना
- स्वच्छ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करना
- खेत की नियमित निगरानी करना

11. फसल सुरक्षा

(1) कीट एवं उनका विस्तृत प्रबंधन

1. माहू

यह छोटे, नरम शरीर वाले कीट होते हैं, जो पत्तियों एवं कोमल भागों से रस चूसते हैं। इनके प्रकोप से पत्तियाँ मुड़ जाती हैं, पीली पड़ जाती हैं तथा पौधों

की वृद्धि रुक जाती है। ये कीट मधुरस स्रावित करते हैं, जिससे कालिख भी विकसित हो सकती है।

प्रबंधनः

- संतुलित नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग करें (अधिक न दें)।
- पीले चिपचिपे ट्रैप (Yellow sticky traps) का उपयोग करें।
- प्राकृतिक शत्रुओं (लेडीबर्ड बीटल आदि) को संरक्षण दें।
- नीम आधारित कीटनाशक (नीम तेल 2–3:) का छिड़काव करें।
- अधिक प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

2. पत्ती खाने वाले कीट

ये कीट पत्तियों को खाकर छिद्र बना देते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण क्रिया प्रभावित होती है। अधिक प्रकोप होने पर पौधे कमजोर हो जाते हैं।

प्रबंधनः

- प्रारंभिक अवस्था में अंडों एवं सूंडियों को हाथ से नष्ट करें।
- खेत की नियमित निगरानी करें।
- प्रकाश प्रपंच का उपयोग करें।
- आवश्यकता होने पर स्पिनोसैड या क्विनालफॉस का छिड़काव करें।

3. तना छेदक

इस कीट की सूंडी तने में प्रवेश कर अंदर के भाग को खाती है, जिससे पौधे का ऊपरी भाग सूख सकता है और वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई करें।
- फसल अवशेषों को नष्ट करें।
- प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट करें।
- क्लोरपायरीफॉस 20 EC का छिड़काव अनुशंसित मात्रा में करें।

4. थ्रिप्स

ये कीट पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ चांदी जैसी दिखाई देती हैं और सूखने लगती हैं।

प्रबंधनः

- खेत में नमी बनाए रखें।
- नीम आधारित उत्पादों का छिड़काव करें।
- अधिक प्रकोप पर फिप्रोनिल का प्रयोग करें।

(2) रोग एवं उनका विस्तृत प्रबंधन

1. पत्ती धब्बा रोग

यह रोग फफूंद के कारण होता है, जिसमें पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे या काले धब्बे बन जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूख जाती हैं।

प्रबंधनः

- रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें।
- फसल चक्र अपनाएँ।
- संतुलित उर्वरक प्रयोग करें।
- मैंकोजेब 0.25ः का छिड़काव करें।

2. रस्ट रोग

इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर जंग जैसे भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ पीली होकर झड़ जाती हैं।

प्रबंधनः

- उचित दूरी पर बुवाई करें।
- संक्रमित पत्तियों को नश्ट करें।
- हेक्साकोनाजोल या प्रोपिकोनाजोल का छिड़काव करें।

3. जड़ सड़न

यह रोग जलभराव की स्थिति में अधिक होता है, जिससे जड़ें सड़ जाती हैं और पौधे मुरझा जाते हैं।

प्रबंधनः

- खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें।
- बीज को कार्बेन्डाजिम से उपचारित करें।
- संतुलित सिंचाई करें।

4. डाउनी मिल्ड्यू

इस रोग में पत्तियों के नीचे फफूंदीय वृद्धि दिखाई देती है तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

प्रबंधनः

- रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।
- खेत में उचित वायु संचार बनाए रखें।
- मेटालेक्सिल युक्त फफूंदनाशी का छिड़काव करें।

12. उपज

राजगीरा (अमरंथ) की फसल की उपज अनेक कारकों पर निर्भर करती है, जैसे–किस्म का चयन, जलवायु, मृदा की उर्वरता, बुवाई का समय, उर्वरक प्रबंधन, सिंचाई तथा कीट एवं रोग नियंत्रण। यदि फसल का समुचित प्रबंधन किया जाए, तो यह कम अवधि में अच्छी उपज देने वाली लाभदायक फसल सिद्ध होती है। राजगीरा की फसल सामान्यतः 90–120 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। जब पौधों की बालियाँ पूरी तरह विकसित हो जाएँ और दाने कठोर होकर हल्के रंग के दिखाई देने लगें, तब फसल कटाई के लिए तैयार मानी जाती है।

औसत उपज

- दाना उपजः 10–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर
- हरी पत्तियाँ (यदि सब्जी के रूप में उपयोग): 80–100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर
- सूखी जीवांश (भूसा/चारा): 20–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर

उन्नत किस्मों एवं वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाने पर यह उपज और अधिक (15–20 क्विंटल/हेक्टेयर तक) प्राप्त की जा सकती है।

कटाई एवं मड़ाई

- फसल को दरांती से काटा जाता है।
- कटाई के बाद फसल को 4–5 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है।
- इसके बाद मड़ाई (थ्रेशिंग) द्वारा दाने अलग किए जाते हैं।
- दानों को साफ करके अच्छी तरह सुखाकर भंडारण किया जाता है।

उपज बढ़ाने के उपाय

- उन्नत एवं प्रमाणित किस्मों का चयन करें।
- समय पर बुवाई एवं उचित दूरी बनाए रखें।

- संतुलित उर्वरक एवं सिंचाई प्रबंधन अपनाएँ।
- खरपतवार, कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण करें।
- मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्वों का उपयोग करें।

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

राजगीरा (अमरंथ) एक अत्यंत पौष्टिक एवं बहुउपयोगी फसल है, जिसके दाने एवं पत्तियों का उपयोग विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। मूल्य संवर्धन के माध्यम से न केवल इसके उत्पादों की विविधता बढ़ाई जा सकती है, बल्कि किसानों एवं उद्यमियों की आय में भी वृद्धि की जा सकती है। राजगीरा के दाने प्रोटीन, खनिज, कैल्शियम एवं आयरन से भरपूर होते हैं, इसलिए इनके प्रसंस्करण से बने उत्पाद स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं तथा बाजार में इनकी मांग भी अधिक रहती है।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद

1. राजगीरा लड्डू : राजगीरा के दानों को भूनकर गुड़ या चीनी के साथ मिलाकर लड्डू बनाए जाते हैं। यह एक लोकप्रिय एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थ है, विशेषकर व्रत (उपवास) के समय उपयोग किया जाता है।

2. राजगीरा आटा : राजगीरा के दानों को पीसकर आटा तैयार किया जाता है। इस आटे से रोटी, पूरी, पराठा एवं अन्य खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं। यह ग्लूटेन–फ्री होने के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है।

3. पॉप्ड राजगीरा : राजगीरा के दानों को भूनकर फुलाया जाता है, जिसे 'रामदाना' कहा जाता है। इसका उपयोग लड्डू, चिवड़ा एवं अन्य स्नैक्स बनाने में किया जाता है।

4. बिस्किट एवं बेकरी उत्पादः राजगीरा के आटे का उपयोग बिस्किट, केक, कुकीज एवं अन्य बेकरी उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। यह उत्पाद पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं में लोकप्रिय हैं।

5. तैयार स्नैक्स : राजगीरा से नमकीन, चिप्स, पफ्स एवं अन्य रेडी–टू–ईट उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जो बाजार में उच्च मूल्य पर बिकते हैं।

मूल्य संवर्धन के लाभ

- उत्पादों की गुणवत्ता एवं उपयोगिता में वृद्धि होती है।
- किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

- रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं।
- बाजार में उत्पादों की मांग एवं प्रतिस्पर्धा बढ़ती है।

मूल्य संवर्धन हेतु सुझाव

- स्वच्छ एवं गुणवत्तापूर्ण कच्चे माल का उपयोग करें।
- प्रसंस्करण के दौरान स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें।
- आकर्षक पैकेजिंग एवं ब्रांडिंग करें।
- बाजार की मांग के अनुसार उत्पादों का चयन करें।

अध्याय १३

ज्वार (सोरघम)

1. परिचय

ज्वार (सोरघम) भारत की प्रमुख खाद्यान्न एवं चारा फसलों में से एक है, जिसे प्राचीन काल से ही मानव आहार तथा पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। यह एक बहुउद्देशीय फसल है, जिसका उपयोग अनाज, हरा चारा, सूखा चारा तथा औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जाता है। ज्वार विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसल है, क्योंकि इसमें सूखा सहन करने की अत्यधिक क्षमता होती है। यही कारण है कि यह फसल सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों एवं छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। ज्वार की फसल कम वर्षा, उच्च तापमान तथा प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यह एक मध्यम अवधि की फसल है, जो सामान्यतः 100–120 दिनों में तैयार हो जाती है। ज्वार का पौधा मजबूत एवं ऊँचा होता है तथा इसकी जड़ प्रणाली गहरी होती है, जिससे यह भूमि से नमी एवं पोशक तत्वों का कुशलतापूर्वक उपयोग कर पाता है। इस फसल में सूखा सहन करने की विशेष क्षमता होने के कारण इसे "कठोर फसल" भी कहा जाता है।

भारत में ज्वार की खेती मुख्य रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, तेलंगाना तथा आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में की जाती है। यह फसल खरीफ मौसम में अधिक उगाई जाती है, जबकि कुछ क्षेत्रों में रबी ज्वार की भी खेती की जाती है। ज्वार का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में प्रमुख खाद्यान्न के रूप में किया जाता है, जहाँ इससे रोटी, भाकरी तथा अन्य पारंपरिक व्यंजन तैयार किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्वार का उपयोग पशु चारे के रूप में भी व्यापक रूप से किया जाता है। पोषण की दृष्टि से ज्वार एक महत्वपूर्ण अनाज है, जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहार रेशा (फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें ग्लूटेन नहीं पाया जाता, इसलिए यह ग्लूटेन–फ्री आहार के रूप में भी उपयोगी है। ज्वार का ग्लाइसेमिक इंडेक्स अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए लाभकारी माना जाता है। वर्तमान समय में स्वास्थ्य के

प्रति बढ़ती जागरूकता तथा संतुलित आहार की आवश्यकता के कारण ज्वार एवं अन्य मिलेट्स का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2023 को "अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष" के रूप में मनाए जाने से भी ज्वार जैसे लघु अनाजों के प्रति लोगों की रुचि में वृद्धि हुई है।

2. वानस्पतिक नाम, स्थानीय नाम एवं कुल (फैमिली)

ज्वार (सोरघम) घास कुल की एक महत्वपूर्ण अनाज फसल है, जिसका पौधा आकार में ऊँचा, मजबूत तथा बहुउपयोगी होता है। यह फसल मुख्य रूप से अनाज एवं चारा दोनों के रूप में उपयोग की जाती है। ज्वार का जीवन चक्र अपेक्षाकृत मध्यम अवधि का होता है तथा यह विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में अनुकूलन करने की क्षमता रखती है।

वानस्पतिक वर्गीकरण :

- वानस्पतिक नाम : *Sorghum bicolor*
- कुल : *Poaceae* (घास कुल)
- वंश : *Sorghum*
- जाति : *bicolor*

ज्वार का पौधा सामान्यतः 1 से 3 मीटर तक ऊँचा होता है। इसका तना मोटा, ठोस तथा गांठदार (नोड्स युक्त) होता है, जो पौधे को मजबूती प्रदान करता है। इसकी पत्तियाँ लंबी, चौड़ी एवं हरी होती हैं, जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ज्वार के पौधे की जड़ प्रणाली गहरी एवं सशक्त होती है, जिससे यह मृदा की गहराई से नमी एवं पोषक तत्वों को अवशोषित कर सकता है। ज्वार का पुष्पक्रम "पैनिकल" प्रकार का होता है, जो पौधे के शीर्ष पर विकसित होता है। इस पैनिकल में अनेक छोटे–छोटे दाने लगे होते हैं, जो परिपक्व होने पर कठोर एवं विभिन्न रंगों (सफेद, पीला, लाल या भूरा) के हो सकते हैं। दानों का आकार गोल या अंडाकार होता है।

स्थानीय नाम :

भारत के विभिन्न राज्यों में ज्वार को अलग–अलग नामों से जाना जाता है, जैसे

- हिंदीः ज्वार
- अंग्रेजीः *Sorghum*
- संस्कृतः यवनाल
- मराठीः ज्वारी
- कन्नड़ः जोला

- तेलुगुः जोन्नालु
- तमिलः चोलम
- मलयालमः चोलम

3. पोषण मूल्य

ज्वार (सोरघम) एक अत्यंत पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक अनाज है, जो मानव आहार में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत होने के साथ–साथ अनेक आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर होता है। ज्वार में मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, आहार रेशा (डाइटरी फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्व पाए जाते हैं, जो शरीर के समुचित विकास एवं क्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। ज्वार में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है, जिससे यह शरीर को पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन भी उचित मात्रा में पाया जाता है, जो शरीर के ऊतकों के निर्माण एवं मरम्मत में सहायक होता है। ज्वार में आहार रेषा (फाइबर) की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा कब्ज जैसी समस्याओं को कम करने में सहायक होता है।

ज्वार में वसा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे यह हल्का एवं सुपाच्य आहार माना जाता है। इसमें आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम जैसे खनिज तत्व भी पाए जाते हैं, जो रक्त निर्माण, हड्डियों की मजबूती तथा शरीर की विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। इसके अतिरिक्त ज्वार में एंटीऑक्सीडेंट तत्व भी पाए जाते हैं, जो शरीर को मुक्त कणों से होने वाले नुकसान से बचाते हैं। ज्वार का ग्लाइसेमिक इंडेक्स अपेक्षाकृत कम होता है, जिसके कारण यह रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने में सहायक होता है। इसलिए यह मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त आहार माना जाता है। साथ ही ज्वार में ग्लूटेन नहीं पाया जाता, जिससे यह ग्लूटेन से संवेदनशील व्यक्तियों के लिए एक अच्छा विकल्प है।

प्रति 100 ग्राम ज्वार के दानों में औसतन पोषक तत्वः

पोषक तत्व	मात्रा
ऊर्जा	लगभग 320–330 किलो कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	72–62 ग्राम
प्रोटीन	9–11 ग्राम
वसा	2–3 ग्राम
आहार रेशा (फाइबर)	6–8 ग्राम
कैल्शियम	25 मिलीग्राम
आयरन	4–5 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	280–300 मिलीग्राम

4. वृद्धि हेतु जलवायु

ज्वार (सोरघम) एक उष्ण एवं अर्ध–शुष्क जलवायु की फसल है, जो प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। यह फसल विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है जहाँ वर्षा कम होती है तथा तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहता है। ज्वार में सूखा सहन करने की अत्यधिक क्षमता होती है, जिसके कारण इसे शुष्क एवं वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। ज्वार की सफल खेती के लिए 25°C से 32°C तापमान उपयुक्त माना जाता है। बीज के अंकुरण के लिए लगभग 20°C से 25°C तापमान अनुकूल रहता है, जबकि पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए गर्म एवं धूप वाली जलवायु आवश्यक होती है। अत्यधिक ठंड, पाला या 15°C से कम तापमान फसल के लिए हानिकारक होता है, जिससे अंकुरण एवं वृद्धि प्रभावित हो सकती है। ज्वार की फसल सामान्यतः 400 से 800 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उगाई जा सकती है। यह फसल कम वर्षा की स्थिति को भी सहन कर सकती है, परंतु अत्यधिक वर्षा या जलभराव की स्थिति में पौधों की जड़ें प्रभावित होती हैं, जिससे फसल की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए ज्वार की खेती के लिए अच्छी जल निकास व्यवस्था आवश्यक होती है। यह फसल मुख्य रूप से खरीफ मौसम में उगाई जाती है, जब मानसून के दौरान पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। कुछ क्षेत्रों में रबी ज्वार की खेती भी की जाती है, जहाँ ठंडे एवं शुष्क मौसम में फसल उगाई जाती है। ज्वार एक मध्यम अवधि की फसल है, जो सामान्यतः 100–120 दिनों में परिपक्व हो जाती है।

5. मृदा

ज्वार (सोरघम) की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, क्योंकि यह फसल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है। फिर भी अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उपयुक्त मृदा का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। ज्वार की फसल अच्छी जल निकास वाली, उपजाऊ तथा मध्यम से भारी बनावट वाली मृदाओं में बेहतर वृद्धि करती है। ज्वार की सफल खेती के लिए काली मिट्टी (रेगुर मृदा), दोमट तथा बलुई दोमट मृदाएं सर्वोत्तम मानी जाती हैं। विशेष रूप से काली मिट्टी में जल धारण क्षमता अधिक होती है, जिससे फसल को लंबे समय तक नमी उपलब्ध रहती है और सूखे की स्थिति में भी पौधों की वृद्धि प्रभावित नहीं होती। दोमट मृदा में जल निकास अच्छा होने के साथ–साथ पोषक तत्वों की उपलब्धता भी संतुलित रहती है, जिससे पौधों का समुचित विकास होता है। ज्वार की जड़ प्रणाली गहरी एवं सशक्त होती है, जिससे यह मृदा की गहराई से नमी एवं पोषक तत्वों का अवशोषण कर सकती है। यही कारण है कि यह फसल

अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है। फिर भी अत्यधिक क्षारीय, अम्लीय या लवणीय मृदाएं ज्वार की खेती के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती हैं, क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। ज्वार की खेती के लिए मृदा का pH मान लगभग 6.0 से 8.0 के बीच उपयुक्त माना जाता है। इस सीमा में पौधों को आवश्यक पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे फसल की वृद्धि एवं उत्पादन बेहतर होता है। जलभराव वाली मृदाएं ज्वार के लिए हानिकारक होती हैं, क्योंकि इससे जड़ों का विकास बाधित होता है और पौधे पीले पड़ने लगते हैं।

6. उन्नत किस्में

ज्वार (सोरघम) की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत एवं क्षेत्र के अनुकूल किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर ऐसी उन्नत किस्मों एवं संकर (Hybrid) किस्मों का विकास किया गया है, जो अधिक उत्पादन देने के साथ–साथ सूखा सहनशीलता, रोग एवं कीट प्रतिरोध तथा बेहतर दाना गुणवत्ता जैसी विशेषताओं से युक्त होती हैं। उन्नत किस्मों के उपयोग से फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा किसानों को अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

भारत में ज्वार की अनेक उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो विभिन्न जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त पाई गई हैं। इनमें प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैं–

1. **CSV–15 :** यह एक लोकप्रिय उन्नत किस्म है, जो अच्छी उपज देने वाली तथा विभिन्न क्षेत्रों में अनुकूल पाई जाती है। इसके दाने मध्यम आकार के होते हैं तथा यह सूखा सहनशील होती है।
2. **CSV–17:** यह किस्म उच्च उत्पादन क्षमता वाली है तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अपेक्षाकृत अच्छी होती है।
3. **CSV–20:** यह एक उन्नत किस्म है, जो कम अवधि में तैयार हो जाती है तथा अच्छी गुणवत्ता के दाने उत्पन्न करती है।
4. **CSH–14 (संकर किस्म):** यह एक उच्च उत्पादक संकर किस्म है, जो अच्छी वृद्धि एवं अधिक दाना उत्पादन के लिए जानी जाती है।
5. **CSH–16:** यह संकर किस्म सूखा सहनशील तथा उच्च उत्पादन देने वाली है, जो अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

6. **M–35–1 (रबी ज्वार):** यह रबी मौसम की एक प्रमुख किस्म है, जो महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में व्यापक रूप से उगाई जाती है। इसके दाने उच्च गुणवत्ता वाले होते हैं तथा भाकरी बनाने के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।
7. **Phule Revati:** यह एक उन्नत किस्म है, जो रबी मौसम के लिए उपयुक्त है तथा अच्छी उपज देने के लिए जानी जाती है।

प्रमुख किस्मों का सारणीबद्ध विवरणः

क्र.सं.	किस्म	परिपक्वता अवधि (दिन)	उपयुक्त बुवाई समय
1	CSV–15	100–110	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई
2	CSV –17	105–115	जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई
3	CSV –20	95–105	जून–जुलाई
4	CSH–14	100–110	जून–जुलाई
5	CSH –16	105–115	जून–जुलाई
6	M–35–1	110–120	सितंबर–अक्टूबर (रबी)
7	Phule Revati	110–115	सितंबर–अक्टूबर

7. बुवाई का समय

ज्वार (सोरघम) की सफल खेती के लिए समय पर बुवाई करना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उचित समय पर बुवाई करने से बीज का अंकुरण अच्छा होता है, पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है तथा अधिक उपज प्राप्त होती है। ज्वार की बुवाई मुख्यतः खरीफ, रबी तथा जायद मौसम के अनुसार अलग–अलग समय पर की जाती है। खरीफ ज्वार की बुवाई सामान्यतः वर्षा ऋतु के प्रारंभ के साथ की जाती है। इसके लिए जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक का समय उपयुक्त माना जाता है, जब मानसून की वर्षा प्रारंभ हो जाती है और मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसान पहली या दूसरी अच्छी वर्षा के बाद बुवाई करते हैं, जिससे अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

रबी ज्वार की बुवाई मुख्यतः उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है। इसके लिए सितंबर के अंतिम सप्ताह से अक्टूबर के मध्य तक का समय उपयुक्त होता है। रबी ज्वार विशेष रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में उगाई जाती है और इसकी गुणवत्ता अच्छी मानी जाती है।

जायद ज्वार की बुवाई कुछ क्षेत्रों में फरवरी से मार्च के बीच की जाती है, जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होती है। हालांकि इसका क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कम होता है। समय पर बुवाई करने से पौधों की वृद्धि संतुलित रहती है, कीट एवं रोगों का प्रकोप कम होता है तथा फसल समय पर पककर तैयार हो जाती है। इसके

विपरीत देर से बुवाई करने पर पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, दानों का विकास ठीक से नहीं हो पाता और उपज में कमी आ सकती है।

8. सिंचाई

ज्वार (सोरघम) सामान्यतः वर्षा आधारित फसल है और इसकी खेती मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। यह फसल कम पानी में भी अच्छी तरह उगने की क्षमता रखती है तथा इसमें सूखा सहन करने की विशेष क्षमता पाई जाती है। इसलिए अधिकांश परिस्थितियों में ज्वार की फसल को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, विशेषकर खरीफ मौसम में। यदि वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है, तो फसल की वृद्धि सामान्य रूप से होती रहती है। किंतु वर्षा की कमी या लंबे समय तक शुष्क अवस्था रहने पर फसल की अच्छी वृद्धि एवं उत्पादन के लिए 1–2 हल्की सिंचाइयाँ देना लाभकारी होता है। विशेष रूप से ज्वार की कुछ महत्वपूर्ण अवस्थाएँ ऐसी होती हैं, जिन पर नमी की पर्याप्त उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है, जैसे–

- अंकुरण अवस्था
- शाखा निर्माण (टिलरिंग) अवस्था
- पुष्पन (फूल आने) की अवस्था
- दाना भरने की अवस्था

इन अवस्थाओं में यदि मृदा में नमी की कमी हो, तो फसल की वृद्धि एवं दानों का विकास प्रभावित हो सकता है।

जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, वहाँ ज्वार की फसल को आवश्यकता अनुसार 3–4 सिंचाइयाँ दी जा सकती हैं। रबी ज्वार की खेती में सिंचाई का विशेष महत्व होता है, क्योंकि इस मौसम में वर्षा नहीं होती है। रबी ज्वार में सामान्यतः 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन बेहतर होता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ज्वार की फसल जलभराव को सहन नहीं कर पाती। खेत में पानी का ठहराव होने पर जड़ों का विकास प्रभावित होता है तथा पौधे पीले पड़ने लगते हैं। इसलिए अच्छी जल निकास व्यवस्था होना अत्यंत आवश्यक है।

9. पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन

ज्वार (सोरघम) की फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। यद्यपि यह फसल अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में भी उगाई जा सकती है, फिर भी उचित मात्रा में पोषक तत्वों की उपलब्धता से पौधों की वृद्धि, दाना निर्माण तथा कुल उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

इसलिए जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग करना चाहिए। सबसे पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः 8–10 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए। इससे मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में सुधार होता है।

रासायनिक उर्वरकों के रूप में ज्वार की फसल के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश का संतुलित उपयोग आवश्यक होता है। सामान्यतः निम्न उर्वरक मात्रा अनुशंसित मानी जाती है

- नाइट्रोजन : 80–100 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- फॉस्फोरस : 40–50 किग्रा प्रति हेक्टेयर
- पोटाश : 40 किग्रा प्रति हेक्टेयर

इन उर्वरकों में से फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय खेत में डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फसल की 30–35 दिन की अवस्था पर टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना उपयुक्त रहता है। इससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है तथा दानों का विकास अच्छी तरह होता है। जिन क्षेत्रों में मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है, वहाँ जिंक सल्फेट का प्रयोग 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से करना लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त सल्फर की कमी होने पर जिप्सम का उपयोग भी किया जा सकता है। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना सबसे अधिक लाभकारी होता है, क्योंकि इससे मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों के अनुसार संतुलित उर्वरक प्रबंधन किया जा सकता है। जैव उर्वरकों जैसे एजोटोबैक्टर एवं पीएसबी (फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) का उपयोग करने से भी पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है तथा मृदा की उर्वरता में सुधार होता है।

10. खरपतवार प्रबंधन

ज्वार (सोरघम) की फसल में खरपतवार एक गंभीर समस्या के रूप में उभर सकते हैं, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में। खरपतवार पौधों के साथ पोषक तत्वों, नमी, प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिसके कारण फसल की वषद्धि एवं विकास प्रभावित होता है तथा उपज में कमी आ सकती है। अतः समय पर एवं प्रभावी खरपतवार प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है। ज्वार की फसल में बुवाई के बाद प्रारंभिक 30–45 दिनों की अवधि खरपतवार नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवधि में यदि खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया जाए, तो वे तेजी से बढ़कर फसल को गंभीर नुकसान पहुँचा सकते हैं।

यांत्रिक एवं सांस्कृतिक विधियाँ

खरपतवार नियंत्रण के लिए सामान्यतः 2–3 बार निराई–गुड़ाई करना उपयुक्त होता है।

- पहली निराई बुवाई के 20–25 दिन बाद
- दूसरी निराई 35–40 दिन बाद
- आवश्यकता होने पर तीसरी निराई भी की जा सकती है

इससे खरपतवार नश्ट हो जाते हैं तथा मिट्टी भुरभुरी हो जाती है, जिससे जड़ों का विकास अच्छा होता है। साथ ही उचित कतार दूरी, समय पर बुवाई तथा साफ बीज का उपयोग करने से भी खरपतवारों की समस्या कम होती है।

रासायनिक विधियाँ

जहाँ श्रमिकों की कमी हो या खरपतवारों का प्रकोप अधिक हो, वहाँ रासायनिक खरपतवारनाशियों का उपयोग किया जा सकता है।

- **प्री–इमर्जेन्स शाकनाशीः** बुवाई के तुरंत बाद पेंडिमेथालिन का प्रयोग लगभग 0.75–1.0 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से किया जा सकता है। यह प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों के अंकुरण को नियंत्रित करता है।

11. फसल सुरक्षा

1. कीट एवं उनका प्रबंधन

ज्वार की फसल पर विभिन्न प्रकार के कीट आक्रमण करते हैं, जो फसल की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित करते हैं। प्रमुख कीट एवं उनके प्रबंधन निम्नलिखित हैं–

प्रमुख कीट

1. शूट फ्लाई : यह कीट प्रारंभिक अवस्था में पौधों को नुकसान पहुँचाता है, जिससे "डेड हार्ट" (सूखी मध्य कली) की स्थिति बन जाती है।

प्रबंधनः

- समय पर बुवाई करना
- प्रतिरोधी किस्मों का चयन
- बीज उपचार (इमिडाक्लोप्रिड आदि)
- आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशी का छिड़काव

2. तना छेदक : इस कीट के लार्वा तनों में छेद कर अंदर से नुकसान पहुँचाते हैं।

प्रबंधनः

- प्रभावित पौधों को नष्ट करना

- फेरोमोन ट्रैप का उपयोग
- क्लोरपाइरीफॉस/कार्बोफ्यूरान का उपयोग

3. एफिड : ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधनः

- नीम आधारित कीटनाशियों का उपयोग
- आवश्यकता होने पर डायमेथोएट का छिड़काव

समन्वित कीट प्रबंधन

- संतुलित उर्वरक उपयोग
- खेत की साफ–सफाई
- जैविक नियंत्रण (परजीवी/परभक्षी)
- आवश्यकता अनुसार रासायनिक नियंत्रण

2. रोग एवं उनका प्रबंधन

ज्वार की फसल विभिन्न फफूंदजनित एवं जीवाणुजनित रोगों से प्रभावित होती है, जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों प्रभावित होते हैं।

प्रमुख रोग

1. दाना फफूंदी : यह रोग दानों पर फफूंद के रूप में दिखाई देता है, जिससे दानों की गुणवत्ता खराब हो जाती है।

प्रबंधनः

- प्रतिरोधी किस्मों का चयन
- समय पर कटाई
- उचित भंडारण

2. डाउनी मिल्ड्यू : इस रोग में पत्तियों पर पीले धब्बे दिखाई देते हैं तथा नीचे की सतह पर फफूंद विकसित होती है।

प्रबंधनः

- रोगमुक्त बीज का उपयोग
- बीज उपचार (मेटालाक्सिल आदि)
- संक्रमित पौधों को हटाना

3. पत्ती झुलसा : पत्तियों पर भूरे धब्बे बन जाते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है।

प्रबंधनः

- फसल चक्र अपनाना
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन
- आवश्यकता होने पर फफूंदनाशी (मैनकोजेब आदि) का छिड़काव

समन्वित रोग प्रबंधन

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग
- बीज उपचार अनिवार्य रूप से करना
- उचित फसल चक्र अपनाना
- खेत में जल निकास की व्यवस्था बनाए रखना
- समय–समय पर फसल का निरीक्षण

12. उपज

ज्वार (सोरघम) की उपज विभिन्न कारकों जैसे उन्नत किस्म, जलवायु, मृदा उर्वरता, सिंचाई, उर्वरक प्रबंधन तथा फसल सुरक्षा उपायों पर निर्भर करती है। यदि वैज्ञानिक एवं उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाया जाए, तो ज्वार की फसल से संतोषजनक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतः ज्वार की अनाज उपज 20–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है। उन्नत किस्मों तथा अच्छी कृषि तकनीकों के उपयोग से यह उपज 35–40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर या इससे अधिक भी प्राप्त की जा सकती है। वहीं वर्षा आधारित एवं कम संसाधनों वाली परिस्थितियों में उपज अपेक्षाकृत कम (10–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) हो सकती है। ज्वार एक महत्वपूर्ण द्वि–उद्देश्यीय फसल है, जिससे अनाज के साथ–साथ चारा भी प्राप्त होता है। ज्वार की हरी चारा उपज सामान्यतः 300–400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है, जबकि सूखे चारे (भूसा) की उपज भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है, जो पशुओं के लिए उपयोगी होती है। रबी ज्वार की उपज सामान्यतः खरीफ ज्वार की तुलना में अधिक स्थिर एवं गुणवत्ता में बेहतर होती है, क्योंकि इस मौसम में कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है।

उच्च उपज प्राप्त करने के लिए निम्न बिंदुओं का ध्यान रखना आवश्यक है–

- उन्नत एवं प्रमाणित बीज का चयन
- समय पर बुवाई
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन

- उचित सिंचाई व्यवस्था
- खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रण

13. प्रसंस्कृत उत्पाद / मूल्य संवर्धन

ज्वार (सोरघम) एक बहुउपयोगी अनाज फसल है, जिसका उपयोग केवल कच्चे अनाज के रूप में ही नहीं बल्कि विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में भी किया जाता है। आधुनिक समय में ज्वार को पोषक एवं ग्लूटेन–फ्री अनाज के रूप में विशेष महत्व प्राप्त हो रहा है, जिससे इसके मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद

1. आटा एवं रोटी उत्पादः ज्वार का आटा बनाकर रोटी, भाकरी एवं अन्य पारंपरिक खाद्य पदार्थ तैयार किए जाते हैं। यह पचने में हल्का तथा पोषक तत्वों से भरपूर होता है।

2. दलिया एवं पोरिज : ज्वार से दलिया तैयार किया जाता है, जो पौष्टिक नाश्ते के रूप में उपयोगी होता है। यह विशेष रूप से बच्चों एवं बुजुर्गों के लिए लाभकारी है।

3. पॉप्ड ज्वार : ज्वार के दानों को भूनकर या फुलाकर स्नैक्स के रूप में उपयोग किया जाता है, जो हल्का एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है।

4. बेकरी उत्पादः ज्वार के आटे का उपयोग बिस्कुट, केक, ब्रेड आदि बनाने में किया जा रहा है। यह ग्लूटेन–फ्री उत्पादों के लिए एक अच्छा विकल्प है।

5. पेय पदार्थ : कुछ क्षेत्रों में ज्वार से पारंपरिक पेय पदार्थ एवं आधुनिक हेल्थ ड्रिंक्स भी तैयार किए जाते हैं।

6. पशु आहार : ज्वार के दाने एवं भूसा दोनों ही पशु आहार के रूप में उपयोग किए जाते हैं, जिससे इसका आर्थिक महत्व बढ़ जाता है।

मूल्य संवर्धन का महत्व

- किसानों को अधिक लाभ एवं आय में वृद्धि
- उत्पादों की बाजार में मांग बढ़ना
- रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होना
- पोषण सुरक्षा को बढ़ावा मिलना

आज के समय में ज्वार आधारित उत्पादों की मांग स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण तेजी से बढ़ रही है। यदि उचित प्रसंस्करण एवं विपणन तकनीकों को अपनाया जाए, तो ज्वार से जुड़े उद्यमों को सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है।